कृषक भारती

जायद विशेषांक–2026

कृषि सूचना ब्युरो, प्रसार निदेशालय
चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर द्वारा विकसित सब्जी फसलों की प्रजातियां

फसल	प्रजातियां
बैंगन	आजाद बी 1, आजाद बी 2, आजाद बी 3, आजाद क्रांति
टमाटर	अंगूरलता, टाइप 1, आजाद टी 2, आजाद टी 3, आजाद टी 5, आजाद टी 6, आजाद टी 8, केटीएच 1 (हाइब्रिड) एवं केटीएच 2 (हाइब्रिड)
सब्जी मटर	आजाद पी 1, आजाद पी 2, आजाद पी 3, आजाद पी 4, आजाद पी 5 एवं केएस 108
भिण्डी	आजाद भिण्डी 1, आजाद भिण्डी 2, आजाद कृष्णा और आजाद मोहिनी
तोरई	कल्यानपुर हरी चिकनी, आजाद तोरई चिकनी 1, आजाद तोरई 2
लौकी	कल्यानपुर लांग ग्रीन, आजाद हरित, आजाद नूतन और आजाद संकर लौकी 1
करेला	कल्यानपुर बारामासी एवं कल्यान सोना
कद्दू	आजाद कद्दू 1
खीरा	कल्यानपुर हरा, आजाद अगेता
प्याज	कल्यानपुर लाल गोल
मूली	कल्यानपुर नं- 1

कृषक भारती

कृषि मूलस्य जीवनम

(जायद विशेषांक अंक 2026)

संरक्षक

के0 विजयेंद्र पांडियन, आई0ए0एस0

कुलपति

प्रधान सम्पादक

प्रो0 (डॉ0) विवेक कुमार त्रिपाठी

निदेशक प्रसार एवं अधिष्ठाता, उद्यान संकाय

सम्पादक मण्डल

डॉ0 कौशल कुमार, अधिष्ठाता, कृषि एवं वानिकी संकाय

डॉ0 वी0के0, कनौजिया, नोडल अधिकारी, आर0के0वी0वाई0

डॉ0 सीमा सोनकर, अधिष्ठाता, गृह विज्ञान महाविद्यालय

डॉ0 राम जी, विभागाध्यक्ष, पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग

डॉ0 सर्वेश कुमार, विभागाध्यक्ष, मृदा विज्ञान विभाग

डॉ0 उमा नाथ शुक्ला, प्राध्यापक, सस्य विज्ञान विभाग

डॉ0 पी0के0 भदौरिया, सह प्राध्यापक, इंजी0 कालेज, इटावा

डॉ0 भूपेन्द्र कुमार सिंह, वैज्ञानिक, के0वी0के0, इटावा

डॉ0 विनोद प्रकाश, वैज्ञानिक, के0वी0के0, औरैया

डॉ0 अर्चना सिंह, सह प्राध्यापक, गृह विज्ञान महाविद्यालय

ग्राफिक्स

श्री दीपक कुमार पाण्डेय

छायांकन

श्री राजेश कुमार दिवेदी

श्री विवेक कुमार दुबे

श्री संजय कुमार

एक प्रति का मूल्य रू रु. 50--

(डाक व्यय अतिरिक्त)

इस अंक में

क्र0 सं0	विषय सूची एवं लेखक	पृष्ठ संख्या

1	**अधिक आय हेतु कमलम फल की वैज्ञानिक उत्पादन तकनीक** रिद्धिमा त्रिपाठी, प्रो0 विवेक कुमार त्रिपाठी, उपेंद्र यादव, स्वरूप मणि एवं प्रतीक्षा शुक्ला	1
2	**जायद में खीरे की उन्नत और वैज्ञानिक खेती** डॉ0 निलेश शर्मा एवं डॉ0 के0के0 सिंह	5
3	**कद्दू वर्गीय सब्जियों की उत्पादन तकनीकी** डॉ0 अमर सिंह, प्रो0 विवेक कुमार त्रिपाठी एवं डॉ0 वी0के0 कनौजिया	7
4	**नींबू वर्गीय फलों की वैज्ञानिक खेती** डॉ0 अंकित सिंह भदौरिया, प्रो0 विवेक कुमार त्रिपाठी, डॉ0 प्रणवीर सिंह एवं डॉ0 रितेश कुमार	10
5	**फल फसलों के उत्पादन में जैविक खेती का महत्व** डॉ0 मनुज अवस्थी, प्रो0 विवेक कुमार त्रिपाठी, डॉ0 सोमेंद्र वर्मा, डॉ0 शिवानन्द पाण्डेय एवं डॉ0 अमित कुमार	13
6	**सतत् पुष्प कृषि : मृदा, जल एवं कीट प्रबंधन हेतु पर्यावरण अनुकूल पद्धतियाँ** डॉ0 हरविन्द्र पाल, डॉ0 शैलजा डी, डॉ0 विकास कुमार यादव, डॉ0 बलवीर सिंह, डॉ0 आकांक्षा सिंह एवं डॉ0 ए0एच0वारसी	16
7	**ग्रीष्मकालीन मूँगफली की आधुनिक वैज्ञानिक खेती** प्रो0 महक सिंह	18
8	**मूँग एवं उड़द की वैज्ञानिक खेती** डॉ0 बलवीर सिंह, डॉ0 अखिलेश मिश्र, डॉ0 अतहर हुसैन वारसी, डॉ0 विकाश कुमार यादव एवं डॉ0 हरविन्द्र पाल	22
9	**जायद मक्का : अतिरिक्त आमदनी का बेहतर विकल्प** डॉ0 सुधांशु वर्मा एवं डॉ0 के0 के0 सिंह	27
10	**गर्मी में करें दूधिया मशरूम की खेती** डॉ0 विश्व विजय रघुवंशी	32
11	**प्राकृतिक खेती में रोग प्रबंधन** डॉ0 उत्कर्ष उपाध्याय, डॉ0 दिपके शीतल, डॉ0 हिमांशु त्रिवेदी, डॉ0 जीतेन्द्र ओझा एवं डॉ0 शुभम बाजपेयी	34
12	**आम में लगने वाले प्रमुख कीट, रोग एवं उनका प्रबन्धन** डॉ0 भूपेन्द्र कुमार सिंह, डॉ0 विनोद प्रकाश एवं डॉ0 अवनींद्र कुमार तिवारी	37
13	**पशुओं हेतु आधुनिक पोषण आहार** डॉ0 सुशील कुमार, डॉ0 गौरव वर्मा, डॉ0 अरूण कुमार एवं प्रो0 रामजी गुप्ता	40
14	**श्री अन्न : पोषण, स्वास्थ्य एवं टिकाऊ कृषि की ओर एक महत्वपूर्ण कदम** डॉ0 अदिति दत्त, डॉ. अंकित सिंह भदौरिया एवं डॉ. आकाश	42
15	**बाजरा आधारित स्वास्थ्य वर्धक उत्पाद : एक टीकाऊ और लाभदायक उद्यम** दिव्या कौशिक, डॉ0 के0के0 सिंह एवं रश्मि दूबे	45
16	**सहजन (मोरिंगा): सेहत का प्राकृतिक खजाना** डॉ0 शैलजा डी, मोनिका वर्मा, डॉ0 आकांक्षा सिंह, डॉ0 हरविन्द्र पाल, डॉ0 विकास कुमार यादव एवं डॉ0 अतहर हुसैन वारसी	48
17	**कृषि संचार माध्यमों द्वारा जायद फसलों की नई तकनीकों का प्रसार** डॉ0 ऐश्वर्या सिंह, डॉ0 विनीता सिंह एवं डॉ0 जया वर्मा	51
18	**खेती से उद्यमिता तक : कृषि प्रसार सेवाओं में महिलाओं की सशक्त भूमिका** डॉ0 आकांक्षा सिंह, डॉ0 विकास कुमार यादव, डॉ0 बलवीर सिंह, डॉ0 हरविंदर पाल, डॉ0 शैलजा देवी एवं सुमित कुमार शुक्ला	53
19	**मृदा नमूना लेने की विधि, पोषक तत्वों की कमी एवं निदान** डॉ0 खलील खान, डॉ0 अजय कुमार सिंह, डॉ0 राजेश राय एवं डॉ0 अरूण कुमार सिंह, डॉ0 शशीकान्त एवं शुभम यादव	57

चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

किसान काल सेन्टर 18001801551 (नि:शुल्क)

कुलपति की कलम से.....

कृषि व्यवसाय आज भी देश में जीविका का एक प्रमुख स्रोत है। भारत की दो तिहाई आबादी कृषि पर निर्भर होने के कारण लोगों की जीविका एवं रोजगार का प्रमुख स्रोत ही कृषि एवं उससे जुड़ा हुआ उद्यम है। इतनी बड़ी जनसंख्या के भोजन के लिये वर्ष 2030 तक 4500 लाख टन खाद्यान्न की आवश्यकता होगी, जबकि वर्तमान में खाद्यान्न उत्पादन लगभग 3486 लाख टन (2024–25) है। किसानों के कल्याण और उनके आर्थिक उन्नयन के लिए सरकार द्वारा अनेक योजनाओं का कियान्वयन करने के बावजूद किसानों की स्थिति दयनीय बने रहने का प्रमुख कारण कृषि की छोटी जोत तथा खाद्यान्न संरक्षण के संसाधनों का अभाव हैं। खाद्य प्रसंस्करण विधा द्वारा ड्राइंग, कैनिंग, निर्वात पैकिंग या अन्य किसी विधि से लम्बे समय तक सामान्य तापक्रम पर खाद्यान संरक्षित तथा मूल्य सम्बर्धन किया जाता है जिससे कृषि उत्पादों को अधिक समय प्रयोग किया जा सकता है। देश व आम आदमी की आर्थिक प्रगति कृषि पर एवं कृषि की सफलता मुख्यतः मौसम की परिस्थितियों पर निर्भर करती है क्योंकि कृषि योग्य भूमि का करीब 48.65: आज भी सिंचाई से वंचित होने के कारण कृषि की सफलता में मानसून तथा जलवायु की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन चुनौतियों के समाधान तथा कृषि के सतत् उन्नयन हेतु भारत देश मे 75 कृषि विश्वविद्यालय एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के 113 अनुसंधान संस्थान कार्य कर रहे है।

प्रदेश की जनसंख्या की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु दलहन, तिलहन, अन्तः फसली योजना, मक्का बीज योजना, मक्का एवं प्रसंस्करण इकाई स्थापित की गई। आज के परिवेश में गुणवत्तायुक्त उत्पादों की मांग बढ़ रही है, इसकी आपूर्ति तभी हो सकती है जब कृषकों को खेती से सम्बन्धित समस्त नई तकनीकी जानकारी के साथ–साथ गुणवत्तायुक्त उत्पादन प्राप्त करने की तकनीकों को विश्वविद्यालय व शोध केन्द्रों से कृषकों के खेतों तक पहुँचाया जाय। एकीकृत फसल प्रणाली, विविधीकरण व पशुपालन को बढ़ावा देने हेतु तकनीकी जानकारी का प्रचार–प्रसार कर कृषकों को लाभान्वित किया जाय। जिसके लिए हमारे विश्वविद्यालय का प्रसार निदेशालय उत्तरोत्तर प्रयासों हेतु प्रतिबद्ध है।

जनसख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य होने के साथ ही क्षेत्रफल की दृष्टि से भी बड़ा राज्य है। उत्तर प्रदेश के विभिन्न अंचलों के मौसम एवं कृषि जलवायु में काफी विविधता है। कृषि जलवायु के आधार पर उत्तर प्रदेश को कृषि जलवायुवीय क्षेत्रों में विभाजित किया गया है. वहीं कृषि पारिस्थितिकीय के आधार पर उत्तर प्रदेश 20 भागों में विभाजित है। उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि है। प्रदेश के आर्थिक विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। उत्तर प्रदेश देश का सर्वाधिक खाद्यान्न उत्पादक राज्य है एवं गेहू गन्ना आलू और दुग्ध उत्पादन में देश में प्रथम स्थान पर है।

प्रदेश की कृषकों की आय में वृद्धि तथा प्रदेश की अर्थव्यवस्था को 01 ट्रिलियन डॉलर बनाये जाने का लक्ष्य रखा गया है जो अत्यधिक चुनौतीपूर्ण है. परन्तु इसे साकार किये जाने के लिये कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों से जुड़ी सभी को समन्वित प्रयास करने की आवश्यकता है। इसके लिये आवश्यक है कि आधुनिक कृषि तकनीकी विकास एवं प्रसार से जुड़े प्रमुख बिन्दुओं का

चिंहित करते हुए समयबद्ध तरीके से रणनीति तैयार की जाये, नये–नय अनुसंधान किये जायें एवं क्षेत्र विशेष हेतु उपयुक्त तकनीकों का कृषकों के मध्य बृहद प्रचार–प्रसार किया जाये एवं इनका क्रियान्वयन कराया जाये। इसके लिय किसानों में कृषि की नई वैज्ञानिक तकनीकों के बारे में उचित जानकारी आवश्यक है। सर्वेक्षणों से पता चला है कि नवीन उन्नत कृषि तकनीकों का मात्र 30 से 35 प्रतिशत ही किसानों द्वारा अंगीकरण किया जा रहा है। यह अन्तर विभिन्न कारकों से नियंत्रित होता है जैसे, उन्नत नवीन तकनीक की समुचित जानकारी का न होना, निवेशों की समय से आपूर्ति न होना एवं आवश्यक संसाधनों की कमी। किसानों को समृद्ध बनाने हेतु आधुनिक कृषि तरीकों जैसे–सूक्ष्म सिंचाई विधियों के साथ फर्टीगेशन, मृदा परीक्षण, सीडड्रिल, आधुनिक कृषि यंत्रों का इस्तेमाल एवं नवीनतम प्रजाति के उच्चगुणवत्तायुक्त फसलों के बीजों को अपनी कृषि क्रियाओं में शामिल करना नितान्त आवश्यक है। खेती के साथ–साथ किसानों को पशुपालन, मुर्गीपालन, बकरी पालन, मत्स्य पालन, मशरुम उत्पादन, मौनपालन जैसे कई उद्यमों को साथ लेकर कार्य करना होगा, जिससे किसानों की आय में वृद्धि हो सके। किसानों तक कृषि ज्ञान के प्रभावी हस्तांतरण के लिए मौजूदा प्रयासों में तालमेल और समन्वय की अति आवश्यकता है। छोटे किसानों तथा दूरदराज के गांवों तक तकनीकी हस्तातरण बहुत चुनौतीपूर्ण कार्य है। विश्वविद्यालय परिक्षेत्र के किसानों तक नवीन कृषि तकनीकी का हस्तांतरण मुख्यतः विश्वविद्यालय में स्थापित 15 कृषि विज्ञान केन्द्रों के द्वारा किया जा रहा है।

जलवायु परिर्वतन चिंता का विषय है जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ने से देश की अर्थव्यवस्था भी प्रभावित होती है। इस दिशा में कृषि वैज्ञानिकों द्वारा निरन्तर शोध कार्य द्वारा ऐसी प्रजातियों को विकसित किया जा रहा है जिन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कम से कम पड़े एवं कृषकों को फसलों का उचित उत्पादन मिल सके।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि इस **कृषक भारती जायद विशेषांक 2026** में प्रकाशित, अनुकरणीय एवं व्यवहारिक कृषि तकनीकी कृषकों, कृषक महिलाओं, कृषि उद्यमियों, बागबानों, प्रसार कार्यकर्ताओं एवं पाठकों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

(के0 विजयेन्द्र पांडियन)
कुलपति

सम्पादकीय

कृषि क्षेत्र के बदलते परिवेश एवं जलवायु परिवर्तन को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है भूमि में जीवांशयुक्त पदार्थ जैसे सड़ी गोबर खाद, वर्मी कम्पोसट, नाडेप कम्पोस्ट, जैव उर्वरक एवं हरी खाद के प्रयोग को बढ़ावा देने के साथ–साथ रसायनिक उर्वरकों का मृदा परीक्षण अथवा क्षेत्र विषेश की आवश्यकता के आधार पर प्रयोग किया जाये। इनके प्रयोग से उगायी जाने वाली फसलों में उर्वरकों के प्रयोग को कम किया जा सकता है तथा उगायी जाने वाली फसलों में बीमारियों एवं कीटों का प्रकोप कम होता है, जिससे लागत घटती है और उच्च गुणवत्ता का उत्पाद प्राप्त होता है। साथ ही उत्पाद स्वादिष्ट एवं पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। इस प्रकार जैविक कृषि से पर्यावरण एवं जल प्रदूषित किये बिना टिकाऊ उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन को देखते हुए टिकाऊ खेती को अपनाना आवश्यक है। जलवायु परिर्वतन, मृदा में जीवांश्म पदार्थ की कमी, अंधाधुन्ध रसायनों का प्रयोग इत्यादि के कुप्रभावों से बचाव के लिये जैविक खेती, प्राकृतिक खेती एवं टिकाऊ खेती एक प्रकार से पर्याय बन चुके हैं। समय रहते यदि सजग नहीं हुआ गया तो भारतीय कृषि आने वाले समय में एक बड़ी चुनौती का रूप धारण कर सकती है। जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरणीय असंतुलन, बढ़ते तापक्रम, घटती वर्षा जैसी अनेकों जलवायु परिवर्तन जैसी घटनाओं का सामना करना पड़ सकता है। टिकाऊ कृषि, अधिक एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन को बढ़ावा देती है वहीं दूसरी ओर उत्पादन लागत को कम करने तथा जलवायु परिर्वतन के प्रभावों एवं अन्य आपदाओं से फसल को लड़ने की शक्ति प्रदान करती है। इस प्रकार जैविक पद्धति से भूमि, जल प्रदूषित किये बिना टिकाऊ उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

कृषि उत्पादों का एक बड़ा भाग उचित बाजार मूल्य तथा भण्डारण व उचित रख–रखाव के कारण नष्ट हो जाता है। खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्य सम्बर्धन के द्वारा उत्पादों को बाजार की माँग के अनुसार तैयार किये जाने, रोजगार को बढ़ावा देना तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

उत्तर प्रदेश को देश में फूड बास्केट के रूप में स्थापित करने के साथ–साथ कृषि टेक्नोलॉजी पर आधारित स्टार्टअप को बढ़ावा दिया जाये तथा इकोनोमिकली सस्टेनेबल डेयरी एवं पोल्ट्री प्रोडक्शनस्टर्स की स्थापना की जाये। सर्वेक्षणों से पता चला है कि नवीन उन्नत कृषि तकनीकों का मात्र 30 से 35 प्रतिशत ही किसानों द्वारा अंगीकरण किया जा रहा है। यह अन्तर विभिन्न कारकों से नियंत्रित होता है जैसे उन्नत नवीन तकनीक की समुचित जानकारी का न होना, निवेशों की समय से आपूर्ति न होना एवं आवश्यक संसाधनों की कमी। किसान का आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवेश भी इसके लिए कुछ हद तक उत्तरदायी है। इसे कम करने के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न तकनीकों की उपयोगिता एवं उपयुक्तता के सम्बन्ध में किसानों को समुचित जानकारी एवं सुविधा उचित समय पर उपलब्ध कराई जाये।

दूसरी तरफ देश का किसान आज भी खेती की परम्परागत विधियों अपनाये हुए है, जिसके कारण कृषकों के लिए खेती आर्थिक दृष्टि से घाटे का सौदा बनती जा रही है जबकि देश में विकसित नवीनतम कृषि तकनीकियों को अपनाने से कृषि

उत्पादन एवं उत्पादकता में बढ़ोत्तरी बिना किसी अतिरिक्त व्यय के संभव हो सकती है। वैज्ञानिकों के समक्ष चुनौती केवल इस बात की है कि कृषि सम्बन्धी नवीनतम तकनीकों का परीक्षण, प्रदर्शन, प्रशिक्षण, प्रक्षेत्र दिवस, कृषक गोष्ठी, किसान मेला आदि प्रचार–प्रसार के माध्यमों से कृषकों तक पहुँचायें और किसानों की आय को दोगुना करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करें। वर्तमान समय में कृषकों को पारंपरिक खेती की जगह स्मार्ट तकनीक खेती करने के लिये प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है ताकि कृषि उत्पादकता बढ़ाई जा सके और किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके। फसल चक्र एवं मृदा स्वास्थ्य कार्ड आधारित खेती, सिंचाई जल का समुचित उपयोग एवं जल संरक्षण की वैज्ञानिक विधियां, प्रक्षेत्र पर मिश्रित खेती और खाद्य प्रसंस्करण की वैज्ञानिक विधियों द्वारा जलवायु परिवर्तन आधारित टिकाऊ खेती की तकनीकों को अपनाकर परिवर्तन संभव है। दलहनी एवं तिलहनी फसलों में चल रहे अग्रणीय प्रदर्शनों की संख्या में बढ़ोत्तरी करनी होगी एवं उन्हें प्रभावी बनाना होगा। इसके साथ–साथ नई–नई प्रजातियों को लोकप्रिय बनाने, एकीकृत फसल प्रणाली, संरक्षित खेती, बहु स्तरीय खेती, प्राकृतिक/जैविक खेती एवं श्री अन्न की खेती को द्रुतगति से विस्तार देने हेतु अधिक से अधिक प्रदर्शनों का आयोजन कृषक प्रक्षेत्रों पर करना आवश्यक है। इन सभी प्रदर्शनों का पूरा लाभ तभी मिल सकता है जब उनमें किसानों एवं ग्रामीण कार्यकर्ताओं की पूरी भागीदारी सुनिश्चित की जाये। इस दिशा में प्रसार निदेशालय लगातार कृषि विज्ञान केंद्रों के माध्यम से प्रयत्नशील है तथा कृषि तकनीकियों को जन जन तक पहुचाने के उद्देश्य से कृषि उपयोगी लेखों का वर्ष में तीन बार प्रकाशन करता है ।

ऐसा मुझे विश्वास है कि **कृषक भारती जायद विशेषांक 2026**, कृषि वैज्ञानिकों द्वारा सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत, अनुकरणीय एवं व्यवहारिक तकनीकी आधारित लेख प्रसार कार्यकर्ताओं, कृषकों, कृषक महिलाओं, बागबानों, पशुपालकों एवं कृषि उद्यमियों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होंगें।

(विवेक कुमार त्रिपाठी)
निदेशक प्रसार

अधिक आय हेतु कमलम फल की वैज्ञानिक उत्पादन तकनीक

रिद्धिमा त्रिपाठी[1], प्रो० विवेक कुमार त्रिपाठी[2], उपेंद्र यादव[1], स्वरूप मणि[1] एवं प्रतीक्षा शुक्ला[1]
[1]शोद्यार्थी, फल विज्ञान विभाग एवं [2]निदेशक प्रसार एवं अधिष्ठाता उद्यान संकाय,
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

कमलम फल, जिसे पिताया और ड्रैगन फ्रूट भी कहा जाता है, न केवल अपने अनोखे रंग और स्वाद के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि इसकी पोषण–समृद्धता और आसान खेती के कारण भी लोगों के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। इसका बाहरी स्वरूप और पुष्प कमल के जैसा होने के कारण इसका नाम कमलम फल रखागया। चुकि इसकी बाहरी परतों पर ड्रैगन जन्तु की तरह कांटे निकले रहते हैं जो देखने मे ड्रैगन जैसे दिखते हैं, के कारण इसको 1963 में सर्वप्रथम ड्रैगन फल नाम दिया गया। यह कैक्टस परिवार का पौधा है, जो अपने आकर्षक फूलों और मीठे–खट्टे रसदार फलों के लिए जाना जाता है। इसको खेतों के साथ साथ घर के गमलों में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। बस सही गमला, मिट्टी और देखभाल जरूरी है। यदि आप बागवानी के शौकीन है या स्वास्थ्य के प्रति सजग है तब ड्रैगन फ्रूट एक ऐसा पौधा है जो आपके बगीचे की शोभा भी बढ़ाएगा और सेहत का खजाना भी देगा। इसे ताजा खाने के साथ या स्मूदी, सलाद और जैम जैसे कई व्यंजनों में इस्तेमाल किया जा सकता है।

कमलम फल (ड्रैगन फ्रूट) किसानों की आय में वृद्धि के साथ साथ पोषक तत्वों से भी परिपूर्ण है। यह फल पोषक तत्वों से भरपूर है और इसमें एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन और खनिज होते हैं, जो कोलेस्ट्रॉल, हृदय रोग और मधुमेह जैसी बीमारियों को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। यह फल मुख्यतः थाइलैंड, वियतनाम, इजरायल और श्रीलंका में लोकप्रिय हैं। भारत मे कमलम की खेती मुख्यतः कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, छत्तीसगढ़, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, और अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में होती हैऔर उत्तर प्रदेश के कई जिलों में भी इसकी खेती होती है।

कमलम फल (ड्रैगन फ्रूट) के प्रकार: कमलम फल (ड्रैगन फ्रूट) मुख्यतः तीन रंगों में पाये जाते है–

1. गुलाबी छिलका, सफेद गूदा (*सेलेनिसेरस अंडाटस*)–सबसे सामान्य किस्म।
2. गुलाबी छिलका, लालगुलाबी गूदा (*सेलेनिसेरस कोस्टारिसेंसिस*)–स्वाद और रंग दोनों में उत्तम।
3. पीला छिलका, सफेद गूदा (*सेलेनिसेरस मेगालेंथस*)–मीठा और रसदार।

उपर्युक्त जलवायु–

कमलम फल के लिए गर्म और उष्णकटिबंधीय जलवायु की आवश्यकता होती है, 20°C से 35° C के बीच का तापमान सबसे आदर्श है। पौधों को ठंड से बचाना जरूरी है, क्योंकि 0° C से नीचे का तापमान इन्हें नुकसान पहुंचा सकता है, पौधे को अच्छी तरह से बढ़ने के लिए प्रतिदिन कम से कम 6 घंटे सीधी धूप की आवश्यकता होती है। अच्छी जल निकासी वाली रेतीली या दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है। मिट्टी का पीएच मान 5.5 से 7.5 के बीच होना चाहिए।

उत्पादन के लिए भूमि और भूमि की तैयारी–

ड्रैगन फ्रूट के लिए जमीन तैयार करने के लिए, पहले खेत की गहरी जुताई करके मिट्टी को भुरभुरा बनाएं, फिर जैविक खाद और रासायनिक उर्वरक मिलाकर गड्ढे तैयार करेंऔर अच्छी जल निकासी सुनिश्चित करें। खेत की गहरी जुताई 30–45 सेंटीमीटर की गहराई तक करें ताकि मिट्टी ढीली हो जाए। पुराने अवशेषों को हटा कर जुताई के बाद खेत को समतल कर लें। समतल खेत में पंक्तियों में 2X2 मीटर की दूरी गड्ढे बनाएँ। प्रत्येक गड्ढे को लगभग 1.5 फीट गहरा और 4 फीट चौड़ा बनाएँ। गड्ढों में लगभग 10–15 किलोग्राम पुरानी गोबर की खाद और 50–70 किलोग्राम NPK की मात्रा को मिट्टी में अच्छे से मिलाकर भरें। ड्रैगन फ्रूट की जड़ों में जलभराव नहीं होना चाहिए। चूंकि यह फल एक बेल की तरह बढ़ता है, इसलिए पौधों के पास 6–7 फीट ऊंचे खंभे (लकड़ी या कंक्रीट) लगाएं, जिन्हें सहारे के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

रोपण सामग्री–

कमलम फल को तने की कटिंग तथा बीज दोनों से ही उगाया जा सकता है, कटिंग सबसे आम और प्रभावी तरीका है। परिपक्व पौधे से 20–25 से मी लंबी स्वस्थ, रोगमुक्त तने को चुनें, कटिंग के कटे हुए सिरों को 1–2 दिन के लिए सूखने दें ताकि लेटेक्स सूख जाए, फफूंद संक्रमण से बचाने के लिए कवकनाशी से कटे हुए सिरों का उपचार करें। रोपण सामग्री को मिट्टी, गोबर और रेत के 1:1:1 के अनुपात वाले मिश्रण में लगाया जाना चाहिए। कटिंग लगाने के बाद, पॉलिथीन बैग को छायादार जगह पर रखें और जड़ों के विकास के लिए नमी बनाए रखें, लेकिन अधिक पानी न दें क्योंकि जड़ सड़न का खतरा होता है।

इसे बीज से भी उगाया जा सकता है, लेकिन इसमें फल आने में अधिक समय लगता है और फल का प्रकार भी मूल पौधे से भिन्न हो सकता है। बीज को गूदे से अलग करें और कागज के तौलिये पर दबाकर नम रखें। लगभग 2–3 हफ्तों बाद बीज अंकुरित होंगे और इन्हें गमलों में लगाया जा सकता है। लेकिन व्यावसायिक खेती के लिए कटिंग को प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि यह जल्दी फल देती है।

भारत में कमलम फल (ड्रैगन फ्रूट) की मांग बढ़ने का कारण –

कमलम फल (ड्रैगन फ्रूट) के आकर्षक और औषधीय गुण ही इसके मांग का प्रमुख कारण है कोविड–19 महामारी के विकराल समय में यह फल काफी लाभदायक साबित हुआ। इस फल में उपस्थित एंटी ऑक्सीडेंट खनिज लवण विटामिन मिनरल्स फाइबर जो हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं इसीलिए इस फल को इम्यून बूस्टर कहा जाता है, भारतीय बाजार में कमलम फल का औसतन कीमत लगभग 100–120 रुपये है। प्रधानमंत्री द्वारा किसानों की दोगुना आय करने की योजना के लिए कमलम फल की खेती सर्वोत्तम उपयुक्त है इसकी खेती आसानी से की जा सकती है। इसमें कीट और रोग बहुत कम लगते हैं पानी की बहुत कम हो सकता है होने के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता भी पाई जाती है और बहुत कम समय में व्यवसायिक उत्पादन शुरु हो जाता है जो किसानों की आमदनी के लिए काफी उपयुक्त है।

कमलम फल के उपयोग और फायदे–

औसधीय गुणों से भरपूर एक ऐसा फल है जो विटामिन सी, ऐन्टीऑक्सीडेंट, फाइबर तथा आयरन जैसे तत्वो से भरपूर है। इसमें मौजूद विटामिन सी और एंटीऑक्सीडेंट शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत बनाने, त्वचा को चमकदार और स्वस्थ बनाए रखने, बालों को मजबूत बनाने में मदद करता है। इसने मौजूद उच्च फाइबर सामग्री पाचन क्रिया को दुरुस्त करती है, कब्ज से बचाती है और आंतों के अच्छे बैक्टीरिया को बढ़ावा देती है। यह आयरन का एक अच्छा स्रोत है, जो शरीर में हीमोग्लोबिन के स्तर को बढ़ाने और खून की कमी को दूर करने में मदद करता है। इसमें कैल्शियम और मैग्नीशियम जैसे पोषक तत्व होते हैं, जो हड्डियों को मजबूत बनाने के लिए आवश्यक हैं। इसमें मौजूद मोनोअनसैचुरेटेड फैट कोलेस्ट्रॉल के स्तर को नियंत्रित करने और हृदय रोगों के खतरे को कम करने में मदद करता है।तथा यह मधुमेह रोगियों के लिए बहुत फायदेमंद है, कम कैलोरी और हाई फाइबर होने के कारण यह लंबे समय तक पेट भरा रखता है, जिससे वजन प्रबंधन में मदद मिलती है।

कमलम फल के प्रति 100 ग्राम फल में उपलब्ध पोषक तत्व–

कमलम फल एक पौष्टिक फल है जिसके प्रति 100 ग्राम मात्रा में नमी 85 %, विटामिन ए 1.1%, प्रोटीन 1.0%, क्रूड फाइबर 1.34 %, ऊर्जा 67.70 %, ग्लूकोज 5.7 %, पोटेशियम 272 %, जिंक 0.35 %, विटामिन सी 3.0 %, मैग्नीशियम 38.0 % पायी जाती है।

खाद एवं उर्वरक की मात्रा–

कमलम फल के रोपण के दौरान 100 से 200 ग्राम प्रति पौधा जैविक खाद और 100 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट प्रदान करें। पहले दो वर्षों में, प्रति पौधे में 300 ग्राम नाइट्रोजन, 200 ग्राम फास्फोरस और 200 ग्राम पोटेशियम दें। प्रत्येक परिपक्व पौधे के लिए 500 ग्राम नाइट्रोजन, 700 ग्राम फॉस्फोरस और प्रति वर्ष 300 ग्राम पोटेशियम प्रदान करें। पोषक तत्वों की इस खुराक को सालाना चार

खुराक में दिया जाना चाहिए। वानस्पतिक अवस्था में इसको लगने वाले रासायनिक खाद का अनुपात पोटाशः सुपर फॉस्फेटः यूरिया–40:90:70 ग्राम प्रति पौधे होता है। जब पौधों में फल लगने का समय हो जाए तब कम मात्रा में नाइट्रोजन और अधिक मात्रा में पोटाश दिया जाना चाहिए ताकि उपज बेहतर हो। फूल आने से लेकर फल आने तक यानि की फूल आने के ठीक पहले (अप्रैल), फल आने के समय (जुलाई या अगस्त) और फल को तोड़ने के दौरान (दिसंबर) तक में इस अनुपात में रासायनिक खाद दिया जाना चाहिए।

सिंचाई और पद्धति–

पौध रोपण के समय, फूल आने के समय और फल के विकास के समय, मौसम शुष्क और गर्म होने पर हल्की सिंचाई कर देना सर्वोत्तम है जिससे फल रंग आकर्षक फल का विकास और उसमें उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा अच्छी होती है और फल आकार में भी बड़े होते हैं। इसके लिए सिंचाई की सबसे उपयोगी विधि बूंद बूंद पद्धति की आवश्यकता हैं।

फलों की तुड़ाई–

कमलम फल मुख्यता द्वितीय वर्ष के अंत से फल देना शुरू कर देते हैं लेकिन व्यवसायिक फलत की शुरुआत 4 से 5 साल में होती है। जिससे पेड़ों का विकास सर्वोत्तम और फल धारण करने की क्षमता हो जाते हैं, सामान्यता मई और जून में फूल आना शुरू हो जाते हैं और फल जुलाई से दिसंबर तक लगे रहते हैं फूल आने के लगभगएक महीना बाद कल की तुड़ाई कर लेते हैं। एक वर्ष में लगभग 4 से 5 बार तुड़ाई करते हैं।

खरपतवार नियंत्रण–

कमलम फल मई खरपतवार नियंत्रण के लिए निराई–गुड़ाई और खरपतवार मैट का उपयोग करें। रोपाई के एक महीने बाद पहली गुड़ाई करें और बाद में जब भी खरपतवार दिखें तो गुड़ाई करते रहें। यह विधि फल के पौधों को खरपतवारों से होने वाली प्रतिस्पर्धा से बचाने में मदद करती है। ड्रैगन फल की फसल में रासायनिक शाकनाशी का उपयोग करने की सलाह नहीं दी जाती है। इसके बजाय जैविक नियंत्रण विधियों पर ध्यान केंद्रित करें।

बीमारी और कीट नियंत्रण–

एन्थ्रेक्नोज–

यह फल के पौधे के तनों, फूलों और फलों पर गहरे, धँसे हुए घावों के रूप में प्रकट होता है। इन घावों में गुलाबी या नारंगी रंग का बीजाणु समूह हो सकता है, जो कवक रोगजनक की उपस्थिति का संकेत देता है। रोग के प्रसार को रोकने के लिए संक्रमित पौधों के भागों को तुरंत हटा दें और नष्ट कर दें। स्वस्थ पौधों के ऊतकों की रक्षा के लिए तांबा या क्लोरोथैलोनिल युक्त कवकनाशी का प्रयोग करें।

स्टेमकैंकर–

स्टेम कैंकर तने पर भूरे या काले रंग के कैंकर के रूप में दिखाई देता है, जो तने को घेर सकता है और क्षय का कारण बन सकता है। संक्रमित कैंकर से लाल–भूरे रंग का रस निकल सकता है, जो गंभीर संक्रमण का संकेत देता है। रोग के प्रसार को रोकने के लिए संक्रमित तनों की छंटाई करें और उन्हें हटा दें। पौधे के शेष स्वस्थ भागों की रक्षा के लिए थायोफिनेट मिथाइल कवकनाशी का प्रयोग करें।

एफिड्स–

ये छोटे, हरे या काले रंग के कीट पौधे के रस को चूसते हैं,जिससे पत्तियां पीली पड़ सकती हैं। 5 मिली नीम तेल को 1 लीटर पानी और थोड़े से साबुन के साथ मिलाकर हर 10–15 दिनों में छिड़काव करें।

स्केल कीड़े–

ये पौधे पर चिपचिपी परत बना सकते हैं और पत्तियों से रस चूसते हैं। कीटों को मारने के बाद स्प्रे पम्प की मदद से शाखाओं पर पानी का तेज स्प्रे करें। इसके बाद हल्के हाथों से कपड़े की मदद से संक्रमित हिस्से को साफ कर लें। ध्यान रहे, पौधे को किसी प्रकार की चोट न लगे।

तुड़ाई का समय और विधि–

कमलम फल का मौसम आमतौर पर मई–जून में फूल लगने के बाद जुलाई से दिसंबर तक चलता है। फल का रंग चमकीला हो और वह पूरी तरह से पक चुका हो तब फल को हल्के से घुमाकर डंठल से अलग करें। फल पूरी तरह पकने पर यह आसानी से टूट जाता है।

उपज–

एक बार निवेश के बाद, यह फसल लगभग 30 वर्षों तक कमाई देती है। कमलम का फल दूसरे साल के अंत से ही उत्पादन शुरू कर देता है, लेकिन 3–4 साल में उत्पादन पूरी तरह से व्यवायिक हो जाता है । एक एकड़ खेत से 5–12 टन तक उपज मिल सकती है। बाजार में 100–120 रुपये प्रति फल की कीमत पर, एक एकड़ से प्रति वर्ष 2–3 लाख रुपये तक का मुनाफा कमाया जा सकता है।

पैकिंग एवं विपणन–

कमलम फल की पैकिंग और विपणन के लिए फलो की कटाई के बाद फलो को छांट लें, खराब और क्षतिग्रस्त फलों को अलग करें, एकल फल या समूहों को प्लास्टिक या कार्ड बोर्ड के क्रेट में रखें। कमरे के तापमान पर फलो को 5–7 दिन तक स्टोर कर सकते हैं।

जायद में खीरे की उन्नत और वैज्ञानिक खेती

डॉ0 निलेश शर्मा[1] एवं डॉ0 के0के0 सिंह[2]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ, [2]अध्यक्ष/वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र, रायबरेली–2

खीरे की खेती का महत्व

खीरा गर्मी की एक लोकप्रिय सब्जी है जो उत्तर प्रदेश जैसे क्षेत्रों में आसानी से उगाई जाती है। यह 95 प्रतिशत पानी वाली फसल है जो पोषक तत्वों से भरपूर होती है और गर्मियों में ठंडक प्रदान करती हैं।

खीरे की विशेषताएं–

खीरा लता बिन्दु पौधा है जो 50–60 दिनों में फल देता है। इसके फल लम्बे हरे और चिकने होते है। जिनका वजन 200–500 ग्राम तक होता है। यह विटामिन K, C और पोटेशियम का अच्छा स्रोत है। (जून–जुलाई) में बुआई आदर्श है।

जलवायु आवश्यकताए–

- खीरा गर्म जलवायु का पौधा है जो अधिक ठंड या पाला सहन नहीं करता।
- इष्टतम तापमानः 25–30°, बढ़वार के लिए अधिकतम 40° तक।
- आर्द्रताः 60–80 प्रतिशत अधिक वर्षा या बदली से रोग बढ़ सकता है।
- जायद फरवरी–मार्च और खरीफ जून–जुलाई में बुआई उपयुक्त।

उत्तर भारत में सूर्य प्रकाश और कम आर्द्रता वाली स्थितियां अच्छी पैदावार देती है।

मिट्टी की आवश्यकताएं–

रेतीली दोमट या दोमट मिट्टी सर्वोत्तम है जिसमें जल निकासी अच्छी हो।

- **पीएच मानः** 6.0–7.5।
- जैविक पदार्थ और अधिक कार्बनिक सामग्री वाली मिट्टी चुनें। नदियों के किनारे वाली बलुई दोमट भूमि विशेष रूप से लाभदायक। भारी मिट्टी में भी उगायी जा सकती है लेकिन जलभराव से बचाएं।

उन्नत किस्में–

- **पूसा लांग ग्रीनः** लम्बे फल (38 टन/हेक्टेयर उपज)।
- **पंजाब खीरा 1:** नेट हाउस के लिए उपयुक्त, बीज रहित किस्म।
- 2021/CUCUVAR-2: उपज 38.13 टन/हे0।

खेत की तैयारी–

खेत को 2–3 बार गहरी जुताई करें ताकि मिट्टी भुरभुरी हो जाए। बुवाई से 15 से 20 दिन पहले 20 से 25 टन गोबर खाद या वर्मी कम्पोस्ट प्रति हेक्टेयर अच्छी तरह मिलाएं। अंत में पाटा चलाकर समतल बनाएं और 1.5 से 2 मीटर चौड़े क्यारियां या थाले/बेड बनाएं। जल निकासी के लिए 30 सेमी0 ऊंचे बेड आदर्श हैं।

बीज दर–

- खुला खेतः 2–3 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर।
- मंडप विधिः 1–15 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर।
- प्रति गड्ढा 2 से 3 बीज बोएं फिर एक स्वस्थ पौधा रखें।

बीज उपचार–

बीज बोने से पहले 2 ग्राम बाविस्टिन या थाईरम से प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करें। इससे फफूंद रोगों से बचाव होता है। जैविक तरीके से ट्राइकोडर्मा (4–5 ग्राम/किग्रा) भी उपयोगी है।

रोपण दूरी–

- पौधे से पौधे की दूरी 60 सेमी0 एवं कतार से कतार की दूरी 1.5–2.0 मीटर होनी चाहिये।

- ❖ गड्ढा विधि 60X60 सेमी0 या 45X30 सेमी0 (मंडप पर)।
- ❖ मंडप 2.0–2.5 मीटर ऊंचा बनाएं, लताएं चढ़ाने के लिए। ड्रिप के साथ 30 सेमी0 चौड़ी नालियां बनाएं।

उर्वरक (प्रति एकड़)–

- ❖ आधार खादः बुवाई से 15–20 दिन पहले 100 क्विंटल गोबर खाद + 30 किग्रा0 यूरिया + 125 किग्रा0 एस0एस0पी0 + 35 किग्रा0 एम0 ओ0 पी0 मिलाएं।
- ❖ शीर्ष खादः 30 दिन बाद 30 किग्रा0 यूरिया + 45 दिन बाद 30 किग्रा0 यूरिया। कुल एन0 पी0 के0 90:125:35 किग्रा0।
- ❖ जैविकः नीम खली 120 किग्रा0 + एजोस्पिरिलम 2 किग्रा0। फूल आने पर 13:00:45 (5 ग्राम/लीटर) स्प्रे करें।

खरपतवार नियंत्रण–

- ❖ यांत्रिकः बुवाई के 15–20 दिन बाद पहली निराई–गुड़ाई फिर 20–30 दिन अंतराल पर दूसरी।
- ❖ रासायनिक : स्टाम्प 50 डब्लू पी (200 ग्राम/एकड़) या पेंडिमेथालिन (1 लीटर/एकड़) बुवाई के 2–3 दिन बाद।
- ❖ मल्चिगः प्लास्टिक से 80–90 प्रतिशत खरपतवार नियंत्रण।

सिंचाई प्रबंधन–

- ❖ पहली सिंचाई बुवाई के तुरंत बाद फिर 4–5 दिन अंतराल पर हल्की सिंचाई।
- ❖ फूल–फल आने पर 3 दिन में एक बार। ड्रिप सिंचाई आदर्श (4 एलपी एच ड्रिप पर 60 सेमी0 दूरी)।
- ❖ कुल 8–10 सिंचाईयां, जल भराव से बचें।

मल्चिंग लाभ–

काली प्लास्टिक मल्च (25 माइक्रोन): मिट्टी तापमान नियंत्रण, नमी संरक्षण (30 प्रतिशत पानी बचत), खरपतवार रोकथाम। बुवाई के समय क्यारियों पर चढ़ाएं। उपज 20–25 प्रतिशत बढ़ोत्तरी।

कीट नियंत्रण–

- ❖ एफिड्स/माहू: नीम तेल (3–5 मिली0/लीटर) या इमिडाक्लोप्रिड (0.3 मिली/लीटर) स्प्रे 15 दिन अंतराल पर।
- ❖ फल मक्खीः पीले स्टिकी ट्रैप (25/एकड़) + नीम आधारित कीटनाशक।
- ❖ लार्वा/कटवर्मः क्लोरोपायरीफॉस (2 मिली0/लीटर)।
- ❖ जैविकः ट्राइकोडर्मा + नीम खली।

रोग नियंत्रण–

- ❖ डाउनी मिल्डयूः मैनकोजेब (2 ग्राम/लीटर) + कार्बेन्डाजिम, सुबह स्प्रे।
- ❖ पाउडरी मिल्ड्यूः सल्फर 80 प्रतिशत डब्लू पी0 2 ग्राम/लीटर)।
- ❖ रूट रॉटः ट्राइकोडर्मा (5 ग्राम/किग्रा0 बीज) + कार्बेन्डाजिम। फसल अवशेष न जलाएं।

कटाई–

फल 15–20 सेमी0 लम्बे गहरे हरे होने पर तुड़ाई करें। (50–60 दिन बाद)। प्रतिदिन सुबह तुड़ाई करें। एक पौधे से 15–20 फल। शेल्फ लाइफ 7–10 दिन (8–10° तापमान पर)।

उपज–

- ❖ खुला खेतः 150–200 क्विंटल/हेक्टेयर (60–80 क्विंटल/एकड़)।
- ❖ मंडप/मल्चिंगः 250–300 क्विंटल/हेक्टेयर।

कद्दू वर्गीय सब्जियों की उत्पादन तकनीकी

डॉ0 अमर सिंह[1], प्रो0 विवेक कुमार त्रिपाठी [2] एवं डॉ0 वी0के0 कनौजिया [3]

[1]वैज्ञानिक, [3]अध्यक्ष एवं वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केंद्र, कन्नौज

[2]निदेशक प्रसार एवं अधिष्ठाता उद्यान संकाय,

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

कद्दू वर्गीय सब्जियां कुकुरविटेशी कुल के अन्तर्गत आती है। सब्जियों में कद्दू वर्गीय सब्जियां अपना विशेष स्थान रखती है। इसकी उपलब्धता वर्ष में लगभग 8–10 महीने रहती है। आर्थिक दृष्टिकोण से इनकी महत्ता अधिक है। इनका उपयोग सलाद (खीरा, ककडी), पकाकर सब्जी के रूप में–लौकी तरोई (नेनुआ), करेला, काशीफल, परवल, कुन्दरू, चिचिन्डा, चप्पन कद्दू, मीठे फल के रूप में तरबूज, खरबूज, मिठाई बनाने में पेठा, परवल, लौकी, अचार बनाने में करेला का उपयोग किया जाता है।

जलवायु–

मुख्य रूप से कद्दू वर्गीय सब्जियां गर्म जलवायु की फसलें हैं व इनमें ज्यादा ठंड और पाला सहन करने की क्षमता नहीं होती है इसकी खेती के लिए सर्वाधिक तापमान 40° से0ग्रे0 और न्यूनतम 20° से0ग्रे0 है। आदर्श तापमान 25–30° से0ग्रे0 है।

भूमि एवं उसकी तैयारी–

बलुई दोमट या दोमट भूमि जिसमें जल निकास का उत्तम प्रबन्ध हो। उपयुक्त मानी जाती है। इसकी खेती नदियों के किनारे भी की जा सकती है। भूमि का पी0एच0 मान 6–7 के बीच हो अच्छा माना जाता है। खेत की जुताई कर उसे समतल कर लेना चाहिए। बीज की बुवाई के लिए आवश्यकतानुसार दूरी पर नाली बना लें। बुवाई नाली एवं थाला पद्धति से करें।

बुवाई का समय–

फरवरी के मध्य से मार्च के मध्य तक। पॉलीहाउस के अन्दर दिसम्बर–जनवरी माह में पॉली ट्रे में पौधे उगाकर फरवरी के अन्त में खेत में रोप कर अगेती फसल ले सकते हैं।

खाद एवं उर्वरक प्रबन्धन–

खाद एवं उर्वरका प्रबन्धन मिट्टी परीक्षण के बाद प्रयोग करें। यदि सम्भव न हो तो संतुलित खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करें।

खाद एवं उर्वरक की मात्रा	प्रयोग विधि
25–30 टन सड़ी गोबर की खाद	बीज बुवाई के 3–4 सप्ताह पहले खेत में मिला दें।
80–100 किग्रा0 नाइट्रोजन	1/3 भाग बीज की बुवाई के समय नालियों में, शेष 25–30 दिन बाद व 40–50 दिन बाद फूल निकलने से पहले।
60 किग्रा0 फास्फोरस	खेत की तैयारी करते समय नालियों में।
60 किग्रा0 पोटाश	खेत की तैयारी करते समय नालियों में।

बीज शोधन– 2.5 –3 ग्रा0 थीरम प्रति किग्रा0 बीज की दर से बीज को उपचारित करना चाहिये।

प्रजातियां–

लौकी– पूसा नवीन, पूसा समृद्धि, पूसा संतृष्टि, पूसा संदेश, पूसा हाइब्रिड–2, पूसा विशेष, अर्का बहार, कल्यानपुर हरी, आजाद शंकर लौकी–4।

तरोई– पूसा चिकनी, पूसा नसदार, अर्का सुमित, अर्का सुजात, को0–1, आलोक।

करेला–पूसा दो मौसमी, कल्यानपुर बारामासी, पूसा हाईब्रिड–1, आजाद नवीन, नरेन्द्र रश्मि।

खीरा– कल्यानपुर हरा, पूसा शीतल, जापानीज लौंग ग्रीन, पूसा संयोग।

टिण्डा– अर्का टिण्डा, पंजाब टिण्डा, अन्नामलाई टिण्डा।

ककडी– अर्का शीतल, लखनऊ अर्ली।

परवल– IIVR- PG-1, PG-2, नरेन्द्र परवल–26, नरेन्द्र परवल–307, नरेन्द्र परवल–604।

कद्दू– पूसा विश्वास, पूसा विकास, आजाद कद्दू–1, नरेन्द्र अमृत, पूसा शंकर–1, काशी हरित।

चिचिण्डा– कोयम्बटूर–4।

कुंन्दरू – डी0बी0आर0–के–1, डी0बी0आर0 के–2।

कुम्हेडा– सी0ओ0–1, सी0ओ0–2।

तरबूज– सूगर बेबी, अर्का ज्योति।

खरबूज– हरा मधु, पूसा मधुरस, हिसार मधुर, पूसा रसराज।

खेत में नालियां बनाना–

खेत में फसल लगाने हेतु फसलानुसार कतार से कतार की दूरी 2–3.5 मीटर रखते हैं। पौधे से पौधे की दूरी 0.5 से 1 मीटर बीज की गहराई 2.5 से 3 सेमी0। नाली की चौडाई 40 से 50 सेमी0 नाली की गहराई 20–30 सेमी0 रखते हैं।

खरपतरवार नियत्रण–

सामान्यतः खरपतवार खुरपी की सहायता से निकालें, जिससे मिट्टी भुर–भुरी बनी रहती है। व्यवसायिक स्तर पर इसकी खेती के लिए खरपतवार नियंत्रण हेतु रासायनिक विधि से पैंडीमैथलीन (स्टाम्प) 3.3 लीटर + 1000 लीटर पानी की दर से प्रति हेक्टेयर बुवाई के 24 से 48 घंटे के अन्दर प्रयोग करें।

सिंचाई प्रबन्धन–

कद्दू वर्गीय सब्जियों हेतु सिंचाई प्रबन्धन एक आवश्यक घटक है। पानी की आवश्यकता न केवल उनकी वानस्पतिक वृद्धि को रोकता है, बल्कि फलों के आकार में टेढ़ापन आ जाता है। जल प्रबन्धन की निम्न क्रान्तिक अवस्थायें हैं। वृद्धिकाल अवस्था, पुष्पन अवस्था, फल विकास की अवस्था।

पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग–

कद्दू वर्गीय सब्जियों में पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग पौधों की बढ़वार, फूल व फल लगने, लिंग परिवर्तन, अगेती पैदावार तथा कीट एवं बीमारियों के प्रति प्रतिरोधकता पैदा करने के लिए किया जाता है। कद्दू वर्गीय सब्जियों में नर एवं मादा पुष्प एक ही बेल पर अलग–अलग लगते हैं। फल मादा पुष्प से ही बनता है। सामान्यतः पौधे पर नर पुष्प अधिक एवं मादा पुष्प कम लगते हैं। इससे उपज कम होती है। कुछ पादप वृद्धि नियामक प्रयोग करके इस समस्या को कम किया जा सकता है।

फसल	पादप वृद्धि नियामक	मात्रा	प्रयोग का समय
लौकी	मैलिक हाइड्राजाइड इथरेल	50 PPM 100 PPM	2 से 4 पत्ती की अवस्था
तरोई	इथरेल	100 PPM	2 से 4 पत्ती की अवस्था
कद्दू	इथरेल	250 PPM	2 से 4 पत्ती की अवस्था
ककडी	इथरेल	25 PPM	2 से 4 पत्ती की अवस्था
टिण्डा	इथरेल	100 PPM	2 से 4 पत्ती की अवस्था
तरबूज	जिब्रलिक एसिड	25 PPM	2 से 4 पत्ती की अवस्था
करेला	साइकोसिल	250 PPM	2 से 4 पत्ती की अवस्था

इन वृद्धि नियमकों के उपयोग से नर फूलों की संख्या कम और मादा फूलों की संख्या बढेगी। साथ ही साथ फल भी अधिक बडे और चमकीले होगें।

उपज–

कद्दू वर्गीय सब्जियों की उपज मौसम के अनुसार घटती बढ़ती रहती है। ग्रीष्मकालीन फसल की अपेक्षा बरसाती फसल में अधिक उपज प्राप्त होती है।

फसल	सामान्य दशा में उपज (कु0/हे0)	मचान पर उपज (कु0/हे0)
करेला	250–300	450–550
लौकी	350–400	600–700
खीरा	200–250	350–400
तरोई	150–200	300–400
चिचिण्डा	100	200–250
कुन्दरू	200–250	300–400
खरबूजा	200–250	–
तरबूज	500–600	–
परवल	200–250	350–400
ककडी	150	200–250

उपज का श्रेणीकरण–

कद्दू वर्गीय सब्जियों की अधिक गुणवत्ता व बाजार में मांग बनाये रखने के लिए उत्पादन को तुडाई उपरान्त मानक के अनुसार श्रेणीकरण करना अति आवश्यक है। रंग के आधार पर, आकार व वजन के आधार पर, सुगन्ध व मिठास के आधार पर।

नींबू वर्गीय फलों की वैज्ञानिक खेती

डॉ0 अंकित सिंह भदौरिया[1], प्रो0 विवेक कुमार त्रिपाठी[2], डॉ0 प्रणवीर सिंह[3] एवं डॉ0 रितेश कुमार[1]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ, [3]प्रभारी, कृषि विज्ञान केंद्र, कासगंज

[2]निदेशक प्रसार एवं अधिष्ठाता उद्यान संकाय,

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

नींबू वर्गीय फसलें (Citrus Crops) विश्व की महत्वपूर्ण फल फसलों में से एक हैं। भारत में इनका उत्पादन व्यापक रूप से किया जाता है और यह पोषण, आय तथा रोजगार का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। नींबू वर्गीय फलों में मुख्य रूप से नींबू, कागजी नींबू, संतरा, मौसमी, माल्टा, चकोतरा तथा किन्नू आदि शामिल हैं। ये फल विटामिन–C, खनिज लवण तथा एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी हैं।

भारत में महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में नींबू वर्गीय फलों की खेती प्रमुख रूप से की जाती है। वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग करने से इन फलों की उत्पादकता तथा गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। उचित किस्मों का चयन, संतुलित पोषण, सिंचाई प्रबंधन तथा रोग–कीट नियंत्रण नींबू वर्गीय फलों की सफल खेती के लिए अत्यंत आवश्यक है।

महत्व एवं उपयोग–

नींबू वर्गीय फलों का आर्थिक और पोषणीय दोनों दृष्टियों से बहुत अधिक महत्व है। ये फल विटामिन–C का प्रमुख स्रोत हैं, जो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त इन फलों में कैल्शियम, फास्फोरस, पोटाश तथा अन्य खनिज तत्व भी पाए जाते हैं।

नींबू और अन्य सिट्रस फलों का उपयोग ताजे फल के रूप में, जूस, शरबत, स्क्वैश, जैम, जेली, मुरब्बा तथा अचार बनाने में किया जाता है। इनके छिलकों से आवश्यक तेल प्राप्त किया जाता है, जिसका उपयोग इत्र, साबुन और औषधीय उत्पादों में किया जाता है।

नींबू वर्गीय फलों का उपयोग औषधीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। ये पाचन क्रिया को सुधारते हैं, शरीर को ताजगी प्रदान करते हैं तथा स्कर्वी जैसे रोगों की रोकथाम में सहायक होते हैं। इसलिए इनकी मांग पूरे वर्षभर बनी रहती है, जिससे किसानों को अच्छी आय प्राप्त होती है।

जलवायु एवं मृदा–

नींबू वर्गीय फलों की सफल खेती के लिए उपोष्ण एवं उष्णकटिबंधीय जलवायु उपयुक्त होती है। इन फसलों के लिए 20–30°C तापमान सबसे अनुकूल माना जाता है। अत्यधिक ठंड, पाला तथा बहुत अधिक गर्मी इनकी वृद्धि और उत्पादन को प्रभावित कर सकती है।

इन फसलों को अच्छी धूप की आवश्यकता होती है, इसलिए खुले स्थान में इनकी खेती करना लाभकारी रहता है। अधिक वर्षा तथा जलभराव की स्थिति पौधों के लिए हानिकारक होती है, जिससे जड़ों में सड़न रोग हो सकता है।

मृदा की दृष्टि से नींबू वर्गीय फल अच्छी जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी में बेहतर उत्पादन देती हैं। मिट्टी का pH 5.5 से 7.5 के बीच होना चाहिए। अत्यधिक क्षारीय या लवणीय मिट्टी में इनकी खेती उपयुक्त नहीं होती।

रोपण एवं दूरी–

नींबू वर्गीय फलों का रोपण सामान्यतः वर्षा ऋतु (जुलाई–अगस्त) या वसंत ऋतु (फरवरी–मार्च) में किया जाता है। रोपण के लिए 60 × 60 × 60 सेमी आकार के गड्ढे तैयार किए जाते हैं। इन गड्ढों को मिट्टी, गोबर की सड़ी खाद तथा कीटनाशक दवा मिलाकर भर दिया जाता है।

पौधों की दूरी किस्म तथा क्षेत्र की परिस्थितियों के अनुसार रखी जाती है। सामान्यतः 5 × 5 मीटर या 6 × 6 मीटर की दूरी उपयुक्त मानी जाती है। उचित दूरी रखने से पौधों को पर्याप्त प्रकाश, पोषण और वायु मिलती है, जिससे उनकी वृद्धि अच्छी होती है।

प्रमुख किस्में–

क्रमांक	समूह	किस्म
1.	नींबू	कागजी नींबू, बारामासी, पंत लेमन–1, पीकेएम–1, पूसा अभिनव
2.	संतरा	नागपुर संतरा, खासी संतरा
3.	मौसमी	किन्नू,सथगुड़ी, जाफा, माल्टा

उपरोक्त उन्नत किस्मों का चयन क्षेत्र की जलवायु और बाजार की मांग के अनुसार करना चाहिए ।

कटाई एवं छंटाई–

नींबू वर्गीय फलों में पौधों को उचित आकार देने के लिए कटाई और छंटाई महत्वपूर्ण होती है। पौधों को प्रारंभिक अवस्था में मुख्य तना को छोड़कर 40–50 सेमी ऊंचाई तक की सभी शाखाओं को हटा दिया जाता है।

छंटाई का मुख्य उद्देश्य सूखी, रोगग्रस्त और आपस में टकराने वाली शाखाओं को हटाना होता है। इससे पौधे में नई स्वस्थ शाखाओं का विकास होता है और फल उत्पादन में वृद्धि होती है।

सिंचाई–

नींबू वर्गीय फलों को नियमित सिंचाई की आवश्यकता होती है, विशेषकर गर्मी के मौसम में। छोटे पौधों को 7–10 दिन के अंतराल पर तथा बड़े पौधों को 15–20 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। फल बनने की अवस्था में नमी की कमी से फल गिर सकते हैं, इसलिए इस समय विशेष ध्यान देना आवश्यक है। आधुनिक समय में ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग करने से जल की बचत होती है और पौधों को आवश्यक नमी मिलती रहती है।

निराई–गुड़ाई–

नींबू वर्गीय बागों में खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है। खरपतवार पौधों के साथ पोषक तत्वों, पानी और प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। निराई–गुड़ाई वर्ष में 3–4 बार करनी चाहिए। इससे मिट्टी भुरभुरी रहती है और पौधों की जड़ों को पर्याप्त वायु मिलती है। आवश्यकतानुसार खरपतवारनाशी रसायनों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

रोग–नींबू वर्गीय फलों में कई प्रकार के रोग लगते हैं, जिनमें प्रमुख हैं।

सिट्रस कैंकर–

लक्षणः पत्तियों, टहनियों और फलों पर भूरे उभरे हुए धब्बे दिखाई देते हैं।

प्रबंधन:

- ❖ रोगग्रस्त शाखाओं को काटकर नष्ट करें।
- ❖ कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3%) या बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें।
- ❖ रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।

गमोसिस–

लक्षण: तने से गोंद जैसा पदार्थ निकलता है और छाल फटने लगती है।

प्रबंधन:

- ❖ प्रभावित भाग को साफ करके बोर्डो पेस्ट लगाएं।
- ❖ जल निकास की उचित व्यवस्था करें।
- ❖ तने को चोट से बचाएं।

जड़ सड़न–

लक्षण: पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और पौधा धीरे–धीरे सूखने लगता है।

प्रबंधन:

- ❖ जलभराव से बचाव करें।
- ❖ ट्राइकोडर्मा युक्त जैविक खाद का प्रयोग करें।
- ❖ कार्बेन्डाजिम या मेटालेक्सिल से मिट्टी उपचार करें।

कीट–नींबू वर्गीय फलों में कई प्रकार के कीट भी नुकसान पहुंचाते हैं, जैसे–

सिट्रस लीफ माइनर–

लक्षण: पत्तियों में सुरंग जैसी रेखाएं दिखाई देती हैं और पत्तियाँ मुड़ जाती हैं।

प्रबंधन:

- ❖ प्रभावित पत्तियों को हटाकर नष्ट करें।
- ❖ नीम आधारित कीटनाशकों का छिड़काव करें।
- ❖ आवश्यकता होने पर इमिडाक्लोप्रिड का छिड़काव करें।

एफिड–

लक्षण: कोमल पत्तियों का रस चूसते हैं, जिससे पत्तियाँ मुड़ जाती हैं।

प्रबंधनः

- ❖ नीम तेल (2–3%) का छिड़काव करें।
- ❖ इमिडाक्लोप्रिड या थायोमेथोक्साम का छिड़काव करें।

सिट्रस ब्लैक फ्लाई–

लक्षण: पत्तियों के नीचे काले रंग के कीट दिखाई देते हैं और पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं।

प्रबंधन:

- ❖ प्रभावित पत्तियों को हटाएं।
- ❖ नीम तेल या डाइमेथोएट का छिड़काव करें।

फल मक्खी–

लक्षण: फल में छेद करके अंडे देती है, जिससे फल सड़ जाते हैं।

प्रबंधन:

- ❖ गिरे हुए फलों को नष्ट करें।
- ❖ मिथाइल यूजेनॉल ट्रैप लगाएं।
- ❖ आवश्यकता होने पर कीटनाशकों का छिड़काव करें।

तुड़ाई एवं उपज–

नींबू वर्गीय फलों की तुड़ाई तब की जाती है जब फल पूरी तरह विकसित और पकने की अवस्था में पहुंच जाते हैं। तुड़ाई सामान्यतः हाथ की सहायता से की जाती है। पौधे लगाने के लगभग 3–4 वर्ष बाद फल उत्पादन प्रारंभ हो जाता है। एक स्वस्थ पौधे से प्रति वर्ष 800–1200 फल तक प्राप्त किए जा सकते हैं, जबकि अच्छी देखभाल और वैज्ञानिक तकनीकों के उपयोग से उत्पादन और अधिक बढ़ाया जा सकता है।

फल फसलों के उत्पादन में जैविक खेती का महत्व

डॉ0 मनुज अवस्थी[1], प्रो0 विवेक कुमार त्रिपाठी[2], डॉ0 सोमेंद्र वर्मा[1], डा0 शिवानन्द पाण्डेय एवं डॉ0 अमित कुमार[1]

[1]टीचिंग एसोसिएट, फल विज्ञान विभाग एवं [2]निदेशक प्रसार एवं अधिष्ठाता उद्यान संकाय, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की जलवायु तथा भौगोलिक परिस्थितियाँ विभिन्न प्रकार की फल फसलों के उत्पादन के लिए अत्यंत अनुकूल हैं। आम, केला, अमरूद, संतरा, सेब, अंगूर आदि फल फसलें न केवल पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि किसानों की आय बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वर्तमान समय में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की उर्वरता, पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। ऐसे में फल फसलों के उत्पादन में जैविक खेती का महत्व तेजी से बढ़ता जा रहा है। हमारे देश में बढ़ती जनसंख्या के साथ–साथ आज भोजन आपूर्ति की समस्या भी बनी हुई है। भोजन की पूर्ति व अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए मानव तरह–तरह के रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, शाकनाशियों व अन्य रासायनिक दवाइयों का उपयोग खेती पर करने लगा है। जिससे उत्पादन तो बढ़ जाती है लेकिन इन खाद्यान्न, फलों अथवा सब्जियों से मानव स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है और इस रासायनिक दवाइयों से ना सिर्फ पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है बल्कि मिट्टी भी अपनी उपजाऊपन खोने लगी है। रासायनिक खेती के चलते हम एक ही भूमि पर लंबे समय तक अच्छा उत्पादन नहीं ले सकते इसीलिए आज हमारे लिए जैविक खेती अपनाना बहुत ही आवश्यक है व जैविक खेती के बारे में जानना भी बहुत ही जरूरी है। सरकार भी जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए बहुत सी योजनाएं ला रही है।

जैविक खेती का अर्थः

जैविक खेती वह कृषि पद्धति है जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और खरपतवारनाशकों के स्थान पर जैविक पदार्थों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, जैव उर्वरक तथा जैव कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखना, पर्यावरण को सुरक्षित रखना तथा स्वास्थ्यवर्धक और गुणवत्तापूर्ण फल उत्पादन करना। जैविक खेती वह खेती है जिसमें पर्यावरण तथा जीव जंतुओं को बिना नुकसान पहुंचाए तथा भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखते हुए खेती की जाती है।

फल फसलों में जैविक खेती का महत्व

मिट्टी की उर्वरता में सुधारः

बढ़ती जनसंख्या के साथ–साथ भोजन की आपूर्ति भी जरूरी है लेकिन उससे भी ज्यादा जरूरी है भूमि को लंबे समय तक उपजाऊ बनाए रखना ताकि हमारी नई पीढ़ी भी इस भूमि से इसी तरह उत्पादन प्राप्त कर सके और यह जैविक खेती से ही संभव है। जैविक खेती में उपयोग किए जाने वाले जैविक पदार्थ मिट्टी की संरचना को बेहतर बनाते हैं। इससे मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ती है, जल धारण क्षमता में सुधार होता है और सूक्ष्म जीवों की सक्रियता बढ़ती है।

पर्यावरण संरक्षणः

आज के दौर में पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है पर्यावरण प्रदूषण कम करने की छोटी सी पहल यह हो सकती है कि रासायनिक खेती ना करके हम जैविक खेती की ओर अग्रसर हो जिससे हानिकारक रसायनों से होने वाले प्रदूषण को कम किया जा सके। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से भूमि, जल और वायु प्रदूषण की समस्या बढ़ती है। जैविक खेती पर्यावरण के अनुकूल होती है और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में सहायक होती है।

फल की गुणवत्ता में सुधारः

आजकल सभी को गुणवत्ता वाली पौष्टिक आहार चाहिए क्योंकि आज सभी लोग अपने स्वास्थ्य को लेकर चिंतित है, इसीलिए जैविक उत्पादों की मांग भी अधिक है और यह मांग बढ़ती ही जा रही है

इसीलिए जैविक खेती किसानों के लिए एक सुनहरा अवसर हो सकता है उसकी आय बढ़ाने का। जैविक पद्धति से उगाए गए फल अधिक स्वादिष्ट, पौष्टिक और सुरक्षित होते हैं। इनमें रासायनिक अवशेषों की मात्रा बहुत कम या नगण्य होती है, जिससे उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य के लिए ये अधिक लाभकारी होते हैं।

दीर्घकालिक उत्पादन क्षमताः

जैविक खेती से मिट्टी की दीर्घकालिक उत्पादकता बनी रहती है। इससे फल बागानों की उत्पादन क्षमता लंबे समय तक स्थिर रहती है।

लागत में कमी और आय में वृद्धिः

जैविक खेती में रासायनिक खादों, रासायनिक शाकनाशियों, रासायनिक कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग नहीं किया जाता। इससे रासायनिक खाद एवं दवाइयों पर निर्भरता कम होती है जिससे किसानों की इससे होने वाली अतिरिक्त लागत में भी कमी होती है। जैविक खेती में स्थानीय संसाधनों जैसे गोबर, फसल अवशेष और हरी खाद का उपयोग किया जाता है, जिससे उत्पादन लागत कम हो जाती है। साथ ही जैविक फलों की बाजार में मांग और कीमत अधिक होने से किसानों की आय बढ़ती है।

जैव विविधता का संरक्षणः

जैविक खेती प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलित बनाए रखने में मदद करती है। इससे लाभकारी कीट, पक्षी और सूक्ष्म जीव सुरक्षित रहते हैं, जो प्राकृतिक रूप से कीट नियंत्रण में सहायक होते हैं।

फल फसलों में उपयोगी जैविक तकनीकेंः

फल उत्पादन में कई जैविक तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है, जैसे वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग, नीम आधारित जैव कीटनाशकों का उपयोग, ट्राइकोडर्मा एवं एजोटोबैक्टर जैसे जैव उर्वरकों का प्रयोग, मल्चिंग तथा फसल अवशेषों का पुनर्चक्रण। इन तकनीकों के प्रयोग से फल फसलों का स्वस्थ और टिकाऊ उत्पादन संभव है।

जैविक खेती के सिद्धांत

इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट्स (IFOAM) के अनुसार जैविक खेती के सिद्धांत निम्नलिखित है–

- ❖ जैविक खेती सजीव पारिस्थितिकी प्रणालियों और चक्रों पर आधारित होनी चाहिए, इसे उनके साथ काम करना चाहिए, उसका अनुकरण करना चाहिए और उन्हें बनाए रखने में मदद करनी चाहिए।
- ❖ जैविक खेती को एक और अविभाज्य के रूप में मिट्टी, पौधों, पशुओं और मनुष्य के स्वास्थ्य को बनाए रखना और सुधारना चाहिए।
- ❖ जैविक खेती ऐसे संबंधों पर आधारित होनी चाहिए जो पर्यावरण और जीवन की प्रक्रियाओं के संबंध में न्यायसंगतता सुनिश्चित करते हैं।
- ❖ जैविक खेती को वर्तमान और भावी पीढ़ियों के स्वास्थ्य एवं कल्याण और पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए सावधानी के साथ और जिम्मेदार तरीके से प्रबंधित किया जाना चाहिए।

जैविक खेती के लाभः

रासायनिक खेती की तुलना में जैविक खेती में तेजी से तो परिणाम नहीं मिलता लेकिन जैविक खेती को सही से करें तो सामान्य खेती से भी अच्छा परिणाम देखने को मिल सकता है और इसके फायदे बहुत सारे हैं जो निम्नलिखित है।

- ❖ जैविक खेती में सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे मृदा की उर्वरता बढ़ती है।
- ❖ बाजार में जैविक उत्पादों की मांग ज्यादा होती है जिससे किसानों की आय में वृद्धि होती है।
- ❖ जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों, रासायनिक दवाइयों का प्रयोग नहीं होने से किसानों की लागत में कमी आती है।

- ❖ जैविक खेती में जैविक खादों का प्रयोग किया जाता है जो कि मुख्यतः कचरों से बनती है इसीलिए घरों से निष्कासित कचरे का निपटारा व सदुपयोग हो जाता है।
- ❖ जैविक रूप से उत्पादित फलों व सब्जियों में पौष्टिकता व गुणवत्ता अधिक होती है तथा जैविक खेती से प्राप्त खाद्य पदार्थों में किसी भी प्रकार की विषाक्तता नहीं पायी जाती। अतः यह हमारे स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक होती है।
- ❖ जैविक खेती में पर्यावरण को या हमारी मिट्टी को किसी भी प्रकार का कोई नुकसान नहीं है इस लिए भी जैविक खेती को प्राकृतिक खेती या इकोफ्रेंडली फार्मिंग कहा जाता है।
- ❖ जैविक खाद के उपयोग से भूमि की गुणवत्ता में सुधार होता है तथा मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ती है।
- ❖ जैविक खेती, रासायनिक खेती की तुलना में बराबर या अधिक उत्पादन दे सकती है अतः जैविक खेती मृदा की उर्वरता बढ़ाने के साथ–साथ किसानों की उत्पादकता भी बढ़ाती है।
- ❖ भूमि के जल स्तर में वृद्धि होती है।
- ❖ जैविक खेती में किसी भी प्रकार का कोई पर्यावरणीय प्रदूषण नहीं होता है।

जैविक खेती की सीमायें:

जैविक खेती के क्या–क्या फायदे हैं यह तो आप ऊपर पढ़ ही चुके हैं लेकिन जैविक खेती की कुछ सीमाएं भी है जो कुछ किसानों की जैविक खेती या जैविक खेती करने की इच्छा पर रुकावट का कार्य कर सकती है, लेकिन यह रुकावट बहुत ही छोटे छोटे हैं जिनका किसान आसानी से सामना कर सकते हैं।

- ❖ जैविक खेती में उत्पादन कम प्राप्त हो सकती है जबकि रासायनिक खादों या दवाइयों का इस्तेमाल करने से उत्पादन में अधिक बढ़ोतरी होती है।
- ❖ आज के समय में एक छोटे किसान के लिए पूर्ण रुप से जैविक खेती पर निर्भर होना संभव नहीं है यह नुकसानदायक भी हो सकता है।
- ❖ जैविक खेती के लिए जागरूकता की कमी।
- ❖ किसानों के पास जैविक खाद तैयार करने के लिए तकनीकी ज्ञान या जानकारी का अभाव है।
- ❖ जैविक खेती में गुणवत्तापूर्ण उत्पादन तो प्राप्त होता है लेकिन उत्पादन कम हो सकता है जिससे बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकता को सिर्फ जैविक खेती से ही पूरा करना असंभव है।
- ❖ फसलों के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्वों को सिर्फ जैविक खादों के द्वारा ही समय पर पूरा कर पाना मुश्किल होता है।

निष्कर्ष:

फल फसलों के उत्पादन में जैविक खेती न केवल पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है, बल्कि यह किसानों की आय बढ़ाने और कृषि को टिकाऊ बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्तमान समय में आवश्यकता है कि किसानों को जैविक खेती की तकनीकों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी दी जाए और उन्हें इसके लिए प्रोत्साहित किया जाए। यदि फल फसलों में जैविक खेती को व्यापक स्तर पर अपनाया जाए, तो यह कृषि और पर्यावरण दोनों के लिए एक सकारात्मक कदम सिद्ध होगा एवं उच्च गुणवत्तायुक्त फलोत्पादन प्राप्त होगा।

सतत् पुष्प कृषिः मृदा, जल एवं कीट प्रबंधन हेतु पर्यावरण अनुकूल पद्धतियाँ

डॉ0 हरविन्द्र पाल[1], डॉ0 शैलजा डी[1], डॉ0 विकास कुमार यादव[1], डॉ0 बलवीर सिंह[1], डॉ0 आकांक्षा सिंह[1] एवं डॉ0 अतहर हुसैन वारसी[2]

[1]विषय–वस्तु विशेषज्ञ, [2]प्रभारी, कृषि विज्ञान केन्द्र, हाथरस।

पुष्प कृषि कृषि का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें सजावटी एवं वाणिज्यिक उपयोग के लिए विभिन्न प्रकार के फूलों का उत्पादन किया जाता है। भारत में गुलाब, गेंदा, ग्लैडियोलस, कार्नेशन, जरबेरा तथा ऑर्किड जैसे फूलों की मांग निरंतर बढ़ रही है। बढ़ती मांग के साथ–साथ उत्पादन बढ़ाने के लिए कई बार रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और अत्यधिक सिंचाई का उपयोग किया जाता है, जिससे पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी संदर्भ में सतत पुष्पक कृषि की अवधारणा महत्त्वपूर्ण बन जाती है। सतत पुष्पकृषि का उद्देश्य ऐसा उत्पादन तंत्र विकसित करना है जिसमें पर्यावरण का संरक्षण हो, प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग हो तथा किसानों को दीर्घकालिक आर्थिक लाभ प्राप्त हो। इसमें मृदा, जल और कीट प्रबंधन के लिए पर्यावरण–अनुकूल तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

मृदा प्रबंधन हेतु पर्यावरण अनुकूल उपायः

मृदा पुष्प कृषि की आधारभूत इकाई है। स्वस्थ और उर्वर मिट्टी के बिना गुणवत्तापूर्ण फूल उत्पादन संभव नहीं है। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से मृदा की संरचना, जैविक गतिविधि तथा पोषक तत्वों का संतुलन प्रभावित हो सकता है। इसलिए सतत पुष्प कृषि में निम्नलिखित उपाय अपनाए जाते हैं:

जैविक खाद का उपयोगः

जैविक खाद मृदा की उर्वरता बढ़ाने का एक सुरक्षित एवं प्राकृतिक तरीका है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित खादों का उपयोग किया जाता है—गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, वर्मी कम्पोस्ट तथा हरी खाद। ये खादें मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाती हैं तथा सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को प्रोत्साहित करती हैं। परिणामस्वरूप मृदा की संरचना में सुधार होता है और पौधों को आवश्यक पोषक तत्व धीरे–धीरे उपलब्ध होते रहते हैं।

फसल चक्रः

एक ही फसल को बार–बार उगाने से मिट्टी के कुछ विशेष पोषक तत्व समाप्त हो जाते हैं तथा रोग–कीटों का प्रकोप बढ़ सकता है। इसलिए पुष्प कृषि में समय–समय पर फसल परिवर्तन करना लाभकारी होता है। उदाहरण के लिए फूलों की फसल के बाद दलहनी फसल उगाने से मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती है।

मल्चिंगः

मल्चिंग में मिट्टी की सतह को जैविक या अजैविक पदार्थों से ढक दिया जाता है। इसके लिए सूखी पत्तियाँ, भूसा, घास या बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक का उपयोग किया जा सकता है। इसके लाभ हैं—मिट्टी की नमी संरक्षित रहती है, खरपतवार की वृद्धि कम होती है, मिट्टी का तापमान संतुलित रहता है तथा मृदा अपरदन कम होता है।

जैव उर्वरकों का प्रयोगः

जैव उर्वरक जैसे एजोटोबैक्टर, राइजोबियम, फॉस्फेट घोलक जीवाणु आदि पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने में सहायक होते हैं। इनका उपयोग करने से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम हो जाती है और मृदा स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है।

जल प्रबंधन के पर्यावरण अनुकूल उपायः

जल संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग सतत कृषि का महत्वपूर्ण सिद्धांत है। पुष्प कृषि में अत्यधिक सिंचाई से जल की बर्बादी के साथ–साथ मृदा की उर्वरता भी प्रभावित हो सकती है। इसलिए निम्नलिखित तकनीकों का उपयोग किया जाता है–

ड्रिप सिंचाई प्रणालीः

ड्रिप सिंचाई में पानी को पाइप एवं ड्रिपर की सहायता से सीधे पौधों की जड़ों तक पहुँचाया जाता है। इसके प्रमुख लाभ हैं—जल की बचत, खरपतवार की वृद्धि में कमी, पौधों की बेहतर वृद्धि तथा उर्वरकों का प्रभावी उपयोग।

वर्षा जल संचयनः

वर्षा जल संचयन के माध्यम से वर्षा के पानी को संग्रहित करके बाद में सिंचाई के लिए उपयोग किया जा सकता है। इससे भूजल पर निर्भरता कम होती है और जल संसाधनों का संरक्षण होता है।

सूक्ष्म सिंचाई तकनीकः

स्प्रिंकलर एवं माइक्रो स्प्रिंकलर जैसी तकनीकें जल वितरण को समान बनाती हैं और कम पानी में अधिक क्षेत्र की सिंचाई संभव बनाती हैं।

उचित जल निकास व्यवस्थाः

फूलों की कई फसलें जलभराव के प्रति संवेदनशील होती हैं। इसलिए खेत में उचित जल निकास व्यवस्था होना आवश्यक है, जिससे अतिरिक्त पानी बाहर निकल सके और पौधों की जड़ें सुरक्षित रहें।

कीट एवं रोग प्रबंधन के पर्यावरण–अनुकूल उपायः

पुष्पकृषि में कीट एवं रोगों का प्रकोप उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों को प्रभावित कर सकता है। रासायनिक कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग पर्यावरण तथा मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। इसलिए सतत पुष्प कृषि में एकीकृत कीट प्रबंधन को अपनाया जाता है।

जैविक कीटनाशकों का उपयोगः

जैविक कीटनाशक प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त होते हैं और पर्यावरण के लिए सुरक्षित होते हैं। उदाहरण–नीम आधारित उत्पाद, ब्यूवेरिया बेसियाना, ट्राइकोडर्मा। ये कीटों और रोगजनकों को नियंत्रित करने में प्रभावी होते हैं।

उपयोगी कीटों का संरक्षणः

कुछ कीट प्राकृतिक रूप से हानिकारक कीटों का नियंत्रण करते हैं। जैसे—लेडी बर्ड बीटल, लेसविंग तथा परजीवी ततैया।

फसल स्वच्छताः

खेत में संक्रमित पौधों या अवशेषों को समय पर हटाने से रोगों का प्रसार कम किया जा सकता है। स्वच्छ खेत रोग नियंत्रण की एक महत्वपूर्ण विधि है।

फेरोमोन ट्रैप एवं चिपचिपे जालः

फेरोमोन ट्रैप का उपयोग नर कीटों को आकर्षित करके उनकी संख्या कम करने के लिए किया जाता है। इसी प्रकार पीले या नीले चिपचिपे जाल उड़ने वाले कीटों को पकड़ने में सहायक होते हैं।

सतत् पुष्प कृषि के लाभः

सतत एवं पर्यावरण–अनुकूल तकनीकों को अपनाने से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं—

- ❖ मृदा की उर्वरता और जैविक गतिविधि में वृद्धि
- ❖ जल संसाधनों का संरक्षण
- ❖ पर्यावरण प्रदूषण में कमी
- ❖ उत्पादन लागत में कमी
- ❖ दीर्घकालिक एवं स्थायी उत्पादन प्रणाली

इसके अतिरिक्त, जैविक एवं पर्यावरण–अनुकूल फूलों की बाजार में मांग भी बढ़ रही है, जिससे किसानों को बेहतर आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

ग्रीष्मकालीन मूँगफली की आधुनिक वैज्ञानिक खेती

प्रो0 महक सिंह
निदेशक शोध/प्रभारी, अर्थ वनस्पति विद् तिलहन
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

ग्रीष्मकालीन मूँगफली की खेती का क्षेत्रफल फर्रूखाबाद, मैनपुरी, हरदोई, अलीगढ़ आदि जिलों में बढ़ा है क्योकि खरीफ की अपेक्षा जायद में कीड़े बीमारियों आदि का प्रकोप कम होता है। ग्रीष्मकालीन मूँगफली से अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिये कृषकों को निम्न तकनीक अपनानी चाहिये।

भूमि की किस्मः

मूँगफली की खेती के लिए बलुअर, बलुअर दोमट या हलकी दोमट भूमि अच्छी रहती है, ग्रीष्मकालीन मूँगफली आलू, मटर, सब्जी मटर तथा राई की कटाई के बाद खाली खेतों में सफलतापूर्वक की जा सकती है।

भूमि की तैयारीः

ग्रीष्मकालीन मूँगफली के लिए खेत की तैयारी अच्छी प्रकार कर लेनी चाहिये। यदि मूँगफली की खेती राई तथा मटर के बाद की जा रही है तो उन खेतों की एक गहरी जुताई तथा 2–3 जुताई देशी हल अथवा कल्टीवेटर से करके खेत भुरभुरा बना लेना चाहिये। आलू की खेती के बाद मूँगफली उगाई जाने की दशा में गहरी जुताई की आवश्यकता नही पड़ती है। देशी हल अथवा कल्टीवेटर से 2–3 बार जोतकर खेत की मिट्टी भुरभुरी बना लेनी चाहिये।प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगाकर खेत को चौरस कर लेना चाहिये ताकि सिंचाई का पानी खेत में समान रूप से फैल जाये तथा पानी की अधिक बरबादी न हो पाये।

प्रजातियों का चयनः

कम अवधि में पकने वाली गुच्छेदार प्रजातियों का चयन ग्रीष्मकालीन मूँगफली की खेती के लिये किया जाये। दक्षिण भारत में विकसित प्रजातियाँ जो निम्न सारणी में अंकित है, में से किसी भी प्रजाति का चयन करना श्रेष्ठ होगा, इन प्रजातियों की प्रदेश में उत्पादन क्षमता अच्छी पायी गयी है।

ग्रीष्मकालीन मूँगफली की उपयुक्त प्रजातियाँ एवं उनके गुण

क्रम सं0	प्रजाति	पकने की अवधि (दिन)	उपज (कु0/है0)	रोलिंग प्रतिशत	तेल प्रतिशत	विशेषतायें
1	आई.सी.जी.एस.–44	105.110	23–27	70	49	कम नमी अधिकतम तापमान की सहन शक्ति, बड नेक्रोसिस, भुनगा, जैसिड एवं पत्ती सुरंग अवरोधी
2	टी.ए.जी.–24	90.100	25–30	69	50	तदैव, सीधी
3	आई.सी.जी.एस.–1	105.110	20–26	70	51	तदैव
4	टी.जी. 37 ए	90.100	25–30	69	50	तदैव, सीधी
5	डी.एच.–86	90.95	28–30	70	50	कम नमी अधिकतम तापमान की सहन शक्ति, बड नेक्रोसिस, भुनगा, जैसिड एवं पत्ती सुरंग अवरोधी
6	एच.एन.जी.–123	124	26–30	70	50	मध्यम फैलने वाली
7	जी.जे.जी.	115.120	30–35	65	50	फैलने वाली, दो दाने
8	आई.सी.जी.वी. –93468 (अवतार)	97	25–30	69	50	कम नमी अधिकतम तापमान की सहन शक्ति, बड नेक्रोसिस, भुनगा, जैसिड एवं पत्ती सुरंग अवरोधी

बीज दर एवं चयनः

बीज का चयन रोग रहित उगायी गयी फसल से करें। ग्रीष्मकालीन फसल से अच्छी पैदावर लेने हेतु 95–100 किग्रा. बीज प्रति हे0 की दर से डालना चाहिए। बीज की मात्रा कम न करें, अन्यथा पौधे कम रहने पर उपज सीधे प्रभावित होगी।

बीज शोधन एवं उपचारः

बोने से पूर्व गिरी को थीरम 75 प्रतिशत डब्लू.एस. 2.0 ग्राम तथा कार्बेन्डजिम 50 प्रतिशत 1 ग्राम घुलनशील चूर्ण के मिश्रण की 3.0 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से शोधित कर लेना चाहिए। इस शोधन के 5–6 घण्टे के बाद बोने से पहले बीज को मूँगफली के विशिष्ट राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें। एक पैकेट कल्चर 10 किग्रा. बीज के लिए पर्याप्त होता है। कल्चर को बीज में मिलाने के लिए आधा लीटर पानी में 50 ग्राम गुड़ घोल ले। घोल में 200 ग्राम राइजोबियम कल्चर का पूरा पैकेट मिलायें, इस मिश्रण को 10 किग्रा. बीज के ऊपर छिडक कर हल्के हाथ से मिलायें, जिससे बीज के ऊपर एक हल्की पर्त बन जाये। इस बीज को साये में 2–3 घण्टे सुखाकर बुवाई प्रातः 10 बजे तक या शाम को 4 बजे के बाद करें। तेज धूप में कल्चर के जीवाणु के मरने की आशंका रहती है। ऐसे खेतों में जहाँ मूँगफली पहली बार या काफी समय बाद बोई जा रही हो, कल्चर का प्रयोग अवश्य करें।

बुवाई की विधिः

खेत में पर्याप्त नमी के लिए पलेवा देकर ग्रीष्मकालीन मूँगफली की बुवाई करना उचित होगा। यदि खेत में उचित नमी नहीं है तो मूँगफली का जमाव अच्छा नहीं होगा जो उपज को सीधा प्रभावित करेगा। गुच्छेदार प्रजातियों ग्रीष्मकालीन खेती के लिए उपयुक्त रहती है। इसकी बुवाई 25–30 सेमी. दूरी पर देशी हल से खोले गये कूड़ों में 8–10 सेमी. की दूरी पर करना चाहिए। बुवाई के बाद खेत में क्रास पाटा लगाकर दानों को पूरी तरह से मिट्टी से ढक देना चाहिए। क्रास पाटा खेत में उपलब्ध नमी को उड़ने से बचाकर संरक्षित करेगा और जमाव को शीघ्र व अच्छा होने में सहायक होगा।

बुवाई का उचित समयः

ग्रीष्मकालीन मूँगफली की अच्छी उपज लेने के लिए अच्छा होगा कि बुवाई मार्च के प्रथम सप्ताह में अवश्य समाप्त कर लें। विलम्ब से बुवाई करने पर मानसून की वर्षा प्रारम्भ होने की दशा में खुदाई के बाद फलियों की सुखाई करने में कठिनाई होगी।

खाद एवं उर्वरक प्रबन्धनः

मूँगफली की अच्छी पैदावार लेने के लिए उर्वरकों का प्रयोग बहुत आवश्यक है। यदि राई एवं मटर की खेती के बाद ग्रीष्मकालीन मूँगफली की खेती की जा रही है तो बुवाई के पूर्व 100 कुन्तल प्रति हे0 की दर से गोबर की खाद डालना चाहिए। आलू तथा सब्जी मटर की फसलों में यदि गोबर की खाद प्रयोग की गयी है तो गोबर की खाद डालने की आवश्यकता नहीं है। राई तथा मटर की खेती के बाद उगाई जा रही मूँगफली में 20 किग्रा. नत्रजन, 50 किग्रा. फास्फेट, 45 किग्रा. पोटाश तथा 300 किग्रा. जिप्सम प्रति हे0 की दर से प्रयोग करना चाहिए। आलू एवं सब्जी मटर या गौहानी खेतों में 15 किग्रा. नत्रजन, 30 किग्रा. फास्फेट, 45 किग्रा. पोटाश तथा 300 किग्रा. जिप्सम डालना उचित होगा। ग्रीष्मकालीन मूँगफली में नत्रजन की अधिक मात्रा न डालें अन्यथा यह मूँगफली की पकने की अवधि बढ़ा देगा। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फेट व पोटाश की पूरी मात्रा कूड़ों में नाई अथवा चोंगे द्वारा बुवाई के समय बीज से करीब 2–3 सेमी. गहरा डालना चाहिए। जिप्सम तथा नत्रजन की शेष आधी मात्रा मूँगफली में फूल निकलते तथा खूँटी बनते समय टापड्रेसिंग करके प्रयोग करना चाहिए। जिप्सम की टापड्रेसिंग के बाद खुरपी से गुड़ाई करके खेत में मिलाना आवश्यक है तथा 4 किग्रा. बोरेक्स प्रति हे0 का प्रयोग करें।

जल प्रबन्धनः

जिन कृषकों के पास सिंचाई के साधनों की व्यवस्था नहीं है वह ग्रीष्मकालीन मूँगफली की खेती न करें। पलेवा देकर बुवाई के बाद पहली सिंचाई जमाव पूर्ण होने तथा सूखी गुड़ाई के 20 दिन बाद करें। ग्रीष्मकालीन मूँगफली की प्रजातियों में 30–35 दिन के बाद फूल आने प्रारम्भ हो जाते है। इसलिए

दूसरी सिंचाई 35 दिन की फसल होने पर करें। 45–50 दिन के बाद खूँटी बनने लगती है। अतः इस अवस्था में नमी की उचित व्यवस्था हेतु 50–55 दिन बाद तीसरी सिंचाई करें। इस समय खूँटी भूमि में गढ़ने लगती है तथा फलियाँ बनने लगती है। चौथी सिंचाई 70–75 दिन के बाद फलियों में दाना भरते समय करना चाहिए। इस प्रकार भरपूर उपज लेने के लिए 4–5 सिंचाइयाँ देना आवश्यक है।

निराई–गुड़ाई:

बुवाई के 15–20 दिन के बाद पहली निकाई–गुड़ाई एवं बुवाई के 40–45 दिन बाद जिप्सम बुरकाव के उपरान्त दूसरी निकाई–गुड़ाई करें। खूंटियाँ (पेगिंग) बनते समय निकाई–गुड़ाई न की जाय।

खरपतवार नियंत्रण:

रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण हेतु पेन्डिमेथेलिन 30 ई.सी. की 3.3 लीटर/हे० अथवा आक्सीफ्लोरफेन 23.5 ई.सी. की 425 मिली. मात्रा 500–700 लीटर पानी में घोल बनाकर बुवाई के 2–3 दिन के अन्दर छिड़काव करना चाहिए। इस छिड़काव से मौसमी घास एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का जमाव नहीं होता है। इस विधि से खरपतवार नियंत्रण केवल अत्यधिक खरपतवार समस्या वाले क्षेत्रों में करें।

कीट/रोग प्रबन्धन:

जायद में उगाई जाने वाली मूँगफली में प्रायः कीट/रोग का प्रकोप न के बराबर रहती है। 3 वर्ष तक गहन अध्ययनों से पता चला कि एनारसिया का प्रकोप 1–2 प्रतिशत, जैसिड़ का प्रकोप 1–3 प्रतिशत, सफेद गिड़ार का प्रकोप शून्य तथा फली बेधक का प्रकोप 5–7 प्रतिशत तक ही देखा गया। इसलिए दीमक एवं फली बेधक की रोकथाम कर ली जाए तो फसल की भरपूर उपज प्राप्त होती है। इन दोनों कीटों का प्रकोप निम्न प्रकार से रोके।

दीमक:

यह सूखे की स्थिति में जड़ों तथा फलियों को काटती है। जड़ कटने से पौधे सूख जाते हैं। फलियों के अन्दर गिरी के स्थान पर मिट्टी भर देती है।

उपचार:

खड़ी फसल में प्रकोप होने पर क्लोरपायरीफास 20 ई.सी. की 3–4 लीटर मात्रा प्रति हे0 की दर से सिंचाई के पानी के साथ प्रयोग करें। कार्बोफ्यूरान 3 जी 20 किग्रा. प्रति हे0 सूत्रकृमि के नियंत्रण के लिए प्रयोग करें।

खुदाई:

खुदाई तभी करें, जब मूँगफली के छिलके के ऊपर नसें उभर आयें, भीतरी भाग कत्थई रंग का हो जाये और मूँगफली का दाना गुलाबी हो जाये। खुदाई करते समय पौधा सीधा रखें पलट कर कड़ी धूप में रखना उचित न होगा। खुदाई करते समय इस बात का ध्यान में रखें कि फसल को खेत में ग्रीष्मकालीन समय में 70–80: फलियाँ पकने के बाद खोद लें।

तुड़ाई:

ग्रीष्म ऋतु में उगाई जाने वाली सभी प्रजातियों में फलियाँ गुच्छों में लगती है। मूँगफली की तुडाई मँहगी शस्य क्रिया है। इसलिये फलियों की तुड़ाई हेतु देशी एवं सस्ती विधि विकसित की गयी है। दो खम्भों को खेत में गाड़ दे और उन खम्भों के ऊपर चौड़ा लकड़ी का पटरा रख कर रस्सी से बांध दें। पटरे पर मूँगफली के पौधे इस प्रकार रखे कि मूँगफली की फलियों एक तरफ किनारे रहे। एक मजबूत डंडे से फलियों को झाड़ कर पौधों से अलग कर ले। इस प्रकार शीघ्र एवं कम लागत में फलियाँ पौधों से अलग हो जायेगी।

सुखाई:

ग्रीष्मकालीन मूँगफली की खेती में फलियों को सुखाना एक महत्वपूर्ण कड़ी है। फलियों की सुखाई पेड़ों की छाया में करें। फलियों की सुखाई तेज धूप में न करें। तेज धूप में सुखाई गयी मूँगफली के दानों का जमाव कम हो जायेगा, जो बीज के प्रयोग के लिए अनुपयुक्त होगा। यदि पेड़ों का अभाव है तो मूँगफली की तुड़ाई 4 बजे सायं के बाद हल्की धूप में सुखा लेना भी उचित रहेगा।

भण्डारणः

खुदाई के बाद फलियों को खूब छाया में सुखाकर भण्डारण करें। यदि गीली मूँगफली का भण्डारण किया जायगा तो फलियाँ काले रंग की हो जायेगी जो खाने एवं बीज हेतु सर्वथा अनुपयुक्त हो जाती है।

ग्रीष्मकालीन मूँगफली से दोहरा लाभः

यदि ग्रीष्मकालीन में उत्पादित मूँगफली के दानों को वर्षा कालीन खेती में प्रयोग करना है तो इन दानों की बुवाई कर सकते है। शत प्रतिशत जमाव होगा और भरपूर उपज मिलेगी। ग्रीष्मकालीन मूँगफली की खेती करके मूँगफली के उत्पादन की क्षति जो वर्षा ऋतु में हुयी है उसकी पूर्ति ग्रीष्मकालीन मूँगफली की खेती से करते हुए उत्पादन बढ़ा सकते है।

प्रभावी बिन्दुः

1. लम्बी अवधि में पकने वाली प्रजातियों की बुवाई कदापि न करें।
2 समय से बुवाई करें एवं बीज दर तथा दूरी पर विशेष ध्यान दें।
3. संस्तुत उर्वरकों के साथ जिप्सम 300 किग्रा./हे० एवं बोरेक्स 4 किग्रा. प्रति हे0 की दर से प्रयोग अवश्य करें।
4. खूँटियाँ बनते समय एवं फली भरते समय सिंचाई अवश्य करें।
5. पकने के निर्धारित समय के अन्दर 70 से 80 प्रतिशत फलियाँ पकने पर (100–110 दिन) खुदाई अवश्य कर लें।

मूँग एवं उड़द की वैज्ञानिक खेती

डॉ0 बलवीर सिंह[1], डॉ0 अखिलेश मिश्र[2], डॉ0 अतहर हुसैन वारसी[3], डॉ0 विकाश कुमार यादव[1] एवं डॉ0 हरविन्द्र पाल[1]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ, [3]प्रभारी, कृषि विज्ञान केन्द्र, हाथरस

[2]दलहन अनुभाग, च0शे0आ0कृषिवि0वि0,कानपुर

मूँग और उड़द दोनों ही 'लेग्युमिनोसी' परिवार की फसलें हैं, जिनमें वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मिट्टी में स्थिर करने की अद्भुत क्षमता होती है। जहाँ मूँग अपनी कम अवधि (60–65 दिन) और सूखे के प्रति सहनशीलता के कारण जायद (गर्मी) के मौसम में (कवर क्रॉप) के रूप में लोकप्रिय है, वहीं उड़द अपनी गहरी जड़ों और पोषक तत्वों की प्रचुरता के लिए जानी जाती है। उत्तर प्रदेश और पंजाब जैसे राज्यों में, गेहूँ की कटाई के बाद खाली पड़े खेतों में इनका वैज्ञानिक उत्पादन न केवल मिट्टी की उर्वरता को 20 से 25 प्रतिशत तक बढ़ाता है, बल्कि किसान की शुद्ध आय में भी वृद्धि करता है। इनके सफल उत्पादन के लिए उचित जल निकास वाली दोमट मिट्टी, उन्नत बीजों का चयन और राइजोबियम कल्चर से बीज उपचार करना सबसे महत्वपूर्ण कदम हैं।

जलवायु आवश्यकता:

गर्म एवं शुष्क जलवायु और 25°C से 35°C का तापमान सबसे उपयुक्त है। ये फसलें पाले के प्रति संवेदनशील हैं और अंकुरण के लिए कम से कम 20°C तापमान की आवश्यकता होती है। यद्यपि ये सूखा–सहनशील हैं, लेकिन जलभराव इनके लिए हानिकारक है।

भूमि चयन और तैयारी:

अच्छे जल निकास वाली बलुई–दोमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है। बुवाई से पहले खेत में पर्याप्त नमी हेतु पलेवा करना आवश्यक है। इसके बाद 2–3 बार जुताई कर पाटा लगाना चाहिए ताकि नमी सुरक्षित रहे और मिट्टी भुरभुरी व समतल हो जाए। ग्रीष्मकालीन फसल के लिए पिछली फसल के बाद सिंचाई कर हैरो चलाना लाभकारी है।

कीट सुरक्षा (दीमक नियंत्रण):

दीमक से बचाव के लिए अंतिम जुताई के समय 20–25 कि.ग्रा. लिण्डेन (10%) या कार्बोरियल (5%) धूल प्रति हेक्टेयर मिट्टी में मिलानी चाहिए। इसके अलावा 10 कि.ग्रा. फोरेट का प्रयोग भी किया जा सकता है।

मूँग की प्रमुख उन्नत किस्में और उनकी विशेषताएं

किस्म का नाम	उत्पत्ति केंद्र	मुख्य विशेषताएँ
आईपीएम 302–2 (कनिका)	आईआईपीआर, कानपुर	उपज क्षमता 11–12 क्विंटल/हेक्टेयर; पीला मोजेक रोग के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी।
आईपीएम 2K14–9 (वर्षा)		उपज क्षमता 10–12 क्विंटल/हेक्टेयर; 65–75 दिनों में पककर तैयार।
आईपीएम 312–20 (वसुधा)		70–80 दिनों में पकने वाली किस्म; औसत उपज 10–11 क्विंटल / हेक्टेयर।
आईपीएम 512–1 (सूर्या)		पीला मोजेक और रुक्ष रोग (एन्थ्रेक्नोज) के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी।
आईपीएम 409–4 (हीरा)		पीला मोजेक, चूर्णिल आसिता और सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा रोग के प्रति प्रतिरोधी।
आईपीएम 205–7 (विराट)		सबसे कम समय (52–55 दिन) में पकने वाली और पीला मोजेक प्रतिरोधी।
आईपीएम 410–3 (शिखा)		पीला मोजेक वायरस के प्रति प्रतिरोधी और उच्च गुणवत्ता वाली किस्म।
एम.एच. 1142	एच.ए.यू, हिसार	पीला मोजेक प्रतिरोधीय एन्थ्रेक्नोज और चूर्णिल आसिता के प्रति मध्यम प्रतिरोधी।

जीएम 6	एसडीएयू, गुजरात	पीला मोजेक और सरकोस्पोरा पत्र बुंदकी के प्रति सहनशील प्रजाति।
पूसा 1371	भा0कृ0अ0स0, नई दिल्ली	बहु–रोग प्रतिरोधी (पीला मोजेक, जड़ सड़न, वेब ब्लाइट और एन्थ्रेक्नोज)।
एसएमएल 1115	पी.ए.यू, लुधियाना	पीला मोजेक वायरस के प्रति मध्यम प्रतिरोधी किस्म।
एमएच 421	सीसीएसएचएयू, हिसार	पीला मोजेक वायरस के प्रति विशेष रूप से प्रतिरोधी।
डीजीजीवी 2	यूएएस, धारवाड़	चूर्णिल आसिता के प्रति मध्यम प्रतिरोधी।

अन्य प्रमुख किस्में: T–44, K–851, श्वेता और स्वाति, KM–2241, KM–2195, आजाद मूँग–1 (KM–2342)

उड़द की प्रमुख किस्में: पंत उर्द 7, पंत उर्द 8, पंत उर्द 9, पंत उर्द 10 (पी यू 10–23), पंत उर्द 12, वल्लभ उर्द 1, IPU 13–1, IPU 11–02, एम.ए.एस.एच. 878 (MASH 878), माश 1190 (एस यू जी 1190), मुलुन्द्रा उर्द 2 (के पी यू 405), के पी यू 12–1735 (कोटा उर्द 4)

बीज की मात्रा: बसंत/ग्रीष्मकालीन: 20–25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर।

बीज शोधन: खेती में बीजों का सही उपचार अच्छी उपज और रोगों से बचाव की नींव है। सबसे पहले बीज जनित रोगों के नियंत्रण के लिए प्रति किलो बीज को 2 ग्राम थीरम और 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम के मिश्रण से शोधित करना चाहिए। इसके बाद मिट्टी में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम को बढ़ाने के लिए 'एन.पी.के. कंसोर्टिया' का उपयोग अत्यधिक लाभकारी हो रहा है। यह एक शक्तिशाली सूक्ष्मजीव सम्मिश्रण है जो नाइट्रोजन के साथ–साथ मिट्टी में मौजूद अघुलनशील फास्फोरस और पोटाश को भी पौधों के लिए सुलभ बनाता है। बीज उपचार के लिए 5–10 मिलीलीटर तरल कंसोर्टिया या 20–25 ग्राम पाउडर को प्रति किलोग्राम बीज की दर से गुड़ के ठंडे और चिपचिपे घोल के साथ मिलाकर बीजों पर समान रूप से लगाया जाता है। यह तकनीक न केवल पौधों के पोषण स्तर को सुधारती है, बल्कि रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम कर खेती की लागत घटाने और पैदावार बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती है।

बुवाई का समय: ग्रीष्म/बसंत मूँग– 15 मार्च से 15 अप्रैल तक।

बुवाई की विधि और दूरी-विधि– बीजों की बुवाई सीड ड्रिल या कूँड़ों में 4–5 सेंटीमीटर की गहराई पर करनी चाहिए।

दूरी (बसंत/ग्रीष्म): इस दौरान पौधों की बढ़त कम होती है, इसलिए कतार की दूरी घटाकर 25 सेमी रखनी चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन: अच्छी पैदावार के लिए प्रति हेक्टेयर 20 कि.ग्रा. नत्रजन, 40–45 कि.ग्रा. फास्फोरस, 20–25 कि.ग्रा. पोटाश और 20–25 कि.ग्रा. गंधक का प्रयोग बुवाई के समय कूँड़ों में करना सबसे लाभकारी रहता है।

सूक्ष्म पोषक तत्व प्रबंधन:

पोषक तत्व	मिट्टी का प्रकार	अनुशंसित मात्रा (प्रति हेक्टेयर)
सल्फर	मध्यम काली / बलुई दोमट	20 कि.ग्रा. (154 कि.ग्रा. जिप्सम के बराबर)
जिंक	लाल रेतीली/दोमट	12.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट हेप्टा हाइड्रेट
	काली मिट्टी	7.5 – 10 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट हेप्टा हाइड्रेट
	तराई क्षेत्र	15 कि.ग्रा. (हर 3 साल में एक बार)
बोरॉन	कमी वाली मिट्टी	0.5 कि.ग्रा. बोरॉन (5 कि.ग्रा. बोरेक्स)
मैंगनीज	बलुई दोमट	2% मैंगनीज सल्फेट में बीज भिगोएँ या 1% का छिड़काव करें
मोलिब्डेनम	कमी वाली मिट्टी	0.5 कि.ग्रा. सोडियम मोलिब्डेट (मिट्टी में या बीज उपचार)

वृद्धि नियामक और पोषक तत्वों का छिड़काव: मूँग की उपज बढ़ाने के लिए पत्तियों पर सीधे पोषक तत्वों और रसायनों का छिड़काव अत्यंत लाभकारी होता है।

1. वृद्धि नियामक और सैलिसिलिक एसिड का छिड़काव: 40 मिलीग्राम एन.ए.ए. (NAA) और 100 मिलीग्राम सैलिसिलिक एसिड को प्रति लीटर पानी में घोलें। पहला छिड़काव फूल आने से पहले और दूसरा छिड़काव उसके 15 दिन बाद करें।इससे फूल कम झड़ते हैं और सूखे की स्थिति में पौधे की सहनशक्ति बढ़ती है।

2. डी.ए.पी.या यूरिया का छिड़काव: फसल की स्थिति के अनुसार निम्नलिखित छिड़काव करें–

• फूल आने के समय 20 ग्राम डी.ए.पी. प्रति लीटर पानी के घोल का पहला छिड़काव करें और दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद दोहराएँ।

• **सिंचित और वर्षा आधारित फसल:** इन क्षेत्रों में 20 ग्राम डी.ए.पी. या 20 ग्राम यूरिया प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करें। पहला छिड़काव फूल आने पर और दूसरा उसके 15 दिन बाद करना चाहिए।

3. सूखा प्रबंधन (सूखे के प्रभाव को कम करने के उपाय): मूँग में सूखा प्रबंधन के लिए पोटेशियम क्लोराइड (2%) और बोरिक एसिड (100 ppm) का घोल कोशिकाओं में जल रोकने की शक्ति बढ़ाता है। जैविक विकल्प के रूप में 500 मिलीलीटर पी.पी.एफ.एम. का प्रति हेक्टेयर छिड़काव पौधों को सूखे के प्रति सहनशील बनाता है। इसके अतिरिक्त, 0-5% काइटोसन का उपयोग पत्तियों पर एक सुरक्षात्मक परत बनाकर वाष्पीकरण द्वारा होने वाले पानी के नुकसान को कम करता है, जिससे सीमित सिंचाई में भी फसल सुरक्षित रहती है।

1. सिंचाई प्रबंधन: जायद (गर्मी) में पहली सिंचाई बुवाई के 20–25 दिन बाद करें और फिर मिट्टी के अनुसार हर 10–15 दिन के अंतराल पर पानी दें। विशेष रूप से फूल आने और फलियों में दाना भरते समय नमी की कमी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि ये फसल की सबसे महत्वपूर्ण अवस्थाएं हैं। प्रतिकूल स्थिति में 2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव उपज बढ़ाने में सहायक होता है।

2. खरपतवार प्रबंधन: मूँग की फसल के शुरुआती 4 से 5 सप्ताह विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि इसी समय खरपतवार सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचाते हैं।

नियंत्रण के तरीके:

यांत्रिक विधि: पहली निराई–गुड़ाई बुवाई के 20–25 दिन बाद करें। दूसरी निराई आवश्यकतानुसार की जा सकती है।

रासायनिक विधि: पेन्डीमेथिलीन बुवाई के तुरंत बाद (अंकुरण से पहले) 2.5 से 3 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यह 4–6 सप्ताह तक खरपतवारों को उगने से रोकता है। यदि रसायन का उपयोग नहीं किया गया है, तो 20–25 दिन पर एक बार हाथों से निराई अवश्य करें ताकि पौधों की बढ़वार अच्छी हो।

संस्तुत खरपतवारनाशी रसायन:

शाकनाशी	दर (ग्रा. सक्रिय मात्रा/हे.)	उत्पाद (ग्रा.मि.ली./हे.)	प्रयोग समय	अभियुक्ति
एलाक्लोर	2000–2500	4000–5000	बुवाई के 0–3 दिन पश्चात	कई वार्षिक घास और कुछ चौड़ी पत्तियों वाले खरपतवारों को नियंत्रित करता है।
पेंडीमेथिलीन	750–1250	2500–4170	बुवाई के 0–3 दिन पश्चात	कई वार्षिक घास और कुछ चौड़ी पत्तियों वाले खरपतवारों को नियंत्रित करता है।
क्युजालोफोन	100	2000	बुवाई के 15–20	उत्कृष्ट नियंत्रण कई वार्षिक घास

एथाइल एगिजाथापर	50–100	500–1000	दिन पश्चात बुवाई के 20–25 दिन पश्चात	को नियंत्रित करता है। सभी प्रकार के खरतपवारों को नियंत्रित करता है।
पेंडीमेथिलीन एवं इमेजाथापीर	1250 एवं 100	4170 एवं 1000	बुवाई के 0–3 एवं 20–30 दिन पश्चात	सभी प्रकार के खरपतवारों को नियंत्रित करता है।

कटाई, मड़ाई और सुरक्षित भंडारण: मूँग की सफल खेती के लिए समय पर कटाई और वैज्ञानिक तरीके से भंडारण अत्यंत आवश्यक है। जब फसल की 75–80% फलियाँ काली या भूरी पड़ जाएं, तब कटाई कर लेनी चाहिए ताकि खेत में दाने बिखरने का नुकसान न हो। कटाई के समय बीजों में नमी 20–25% होनी चाहिए, जिसे मड़ाई के बाद धूप में सुखाकर 12% से कम पर लाना जरूरी है। भंडारण के दौरान 10–12% नमी बनाए रखना सबसे बड़ी चुनौती है, क्योंकि अधिक नमी (घुन–पल्स बीटल) जैसे कीटों को आमंत्रित करती है जो फसल को पूरी तरह नष्ट कर सकते हैं। सुरक्षित भंडारण के लिए पुराने बोरों को गर्म पानी में उबालकर सुखाना चाहिए और गोदाम की दीवारों पर मैलाथियान जैसे रसायनों का छिड़काव करना चाहिए। बिस या कोठियों के उपचार के लिए एल्युमिनियम फॉरफाइड का प्रयोग करना सबसे प्रभावी रहता है।

प्रमुख रोग और उनका प्रबंधन

रोग का नाम	कारक (विषाणु/कवक/कीट)	मुख्य लक्षण	प्रबंधन
पीत चितेरी (पीला मोजेक)	विषाणु (सफेद मक्खी द्वारा संचारित)	पत्तियों पर पीले धब्बे, जो बाद में पूरी पत्ती को पीला कर देते हैं। फलियां और दाने भी पीले हो जाते हैं।	अवरोधी प्रजातियां चुनें। सफेद मक्खी के नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड (0.1) या डायमेथोएट (0.3) का छिड़काव करें।
पर्ण संकुचन (लीफ कर्ल)	विषाणु (थ्रिप्स कीट द्वारा संचारित)	पत्तियों के किनारे पीले और नीचे की ओर मुड़ जाते हैं। पत्तियां भंगुर होकर गिरने लगती हैं और पौधा बौना रह जाता है।	इमिडाक्लोप्रिड (5 ग्रा.धकि.ग्रा.) से बीजोपचार करें। बुवाई के 15 दिन बाद इमिडाक्लोप्रिड (0.5 मि.ली.ली.) का छिड़काव करें।
पर्ण व्याकुंचन	विषाणु (बीज, मांहू और सफेद मक्खी द्वारा)	पत्तियां सामान्य से बड़ी, मोटी और झुर्रीदार हो जाती हैं। फूल गुच्छेदार होकर गिर जाते हैं।	रोगी पौधों को उखाड़कर जला दें। सफेद मक्खी नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड या डायमेथोएट का प्रयोग करें।
सरकोस्पोरा पर्ष धब्बा बुंदकी	क्वक (*सर्कोस्पोरा स्पेशीज*)	पत्तियों पर गहरे भूरे धब्बे, जिनका किनारा लाल–भूरा होता है। अधिक संक्रमण पर पत्तियां गिर जाती हैं।	थीरम (2.5 ग्रा.कि.ग्रा.) से बीजोपचार। लक्षण दिखने पर कार्बेन्डाजिम (0.05%) या मेंन्कोजेब (0.25%) का छिड़काव करें।
चर्णिल आसिता (पाउडर रूपी)	कवक (*एरीसिफे पॉलीगोनी*)	पत्तियों, तनों और फलियों पर सफेद चूर्ण जैसे धब्बे बन जाते हैं। प्रकाश संश्लेषण रुक जाता है।	घुलनशील गंधक (0.2%) या कार्बेन्डाजिम (0.5 ग्रा.ली.) का छिड़काव करें। अवरोधी किस्में अपनाएं।
रुक्ष रोग (एन्थ्रेक्नोज)	कवक (*कोलेटोट्राइकम स्पेशीज*)	पत्तियों और फलियों पर धंसे हुए भूरे–काले धब्बे। आर्द्र मौसम में धब्बे लाल रंग के कोनिडिया के कारण लाल दिखते हैं।	कार्बेन्डाजिम (1ग्रा.कि.ग्रा.) से बीजोपचार। खेत में जिनेब या मैंकोजेब (0.2%) का छिड़काव करें।

प्रमुख कीट और उनका प्रबंधन

कीट का नाम	क्षति के लक्षण	प्रबंधन और रासायनिक उपचार
हरा फुदका (जैसिड)	पत्तियों के किनारे पीले होकर मुड़ना और बाद में सूख जाना। पौधों की वृद्धि रुक जाती है।	अंतःवर्ती फसल (ज्वार, बाजरा) उगाएं। डाइमेथोएट 30 ई.सी.- (1.2 मिली/लीटर) का छिड़काव करें।
सफेद मक्खी (सफेद मक्खी)	यह पीत चितेरी रोग फैलाती है। रस चूसने से पत्तियां मुड़ती हैं और उन पर काली फफूंद जम जाती है।	कीट अवरोधी किस्में (पन्त मूंग 4, आईपीएम 2–3) उगाएं। डाइमेथोएट 30 ई.सी.(1.7 मिली/लीटर) का छिड़काव करें।
थ्रिप्स (थ्रिप्स)	कलियों और फूलों का रस चूसते हैं, जिससे फूल गिर जाते हैं और फलियां नहीं बनतीं। पौधा झाड़ीनुमा दिखता है।	थायोमेथाक्साम 70 डब्ल्यू.एस. (0.2%) से बीज उपचार करें। डाइमेथोएट (0.7 मिली/लीटर) का छिड़काव करें।
ब्लिस्टर बीटल	नारंगी–काले रंग के वयस्क कीट फूलों के परागकोष को खा जाते हैं, जिससे फलियां नहीं बनतीं।	ऐसफेट 75एस.पी. (1.0 ग्राम/लीटर) या क्यूनालफॉस 25 ई.सी (2.0 मिली/लीटर) का छिड़काव करें।
माँहू (एफिड)	पत्तियों का रस चूसते हैं और मोजैक वायरस फैलाते हैं। नई पत्तियों और फलियों पर झुंड में मिलते हैं।	इमिडाक्लोप्रिड 17.8एस.एल. (0.2 मिली/लीटर) या डाइमेथोएट (1.7 मिली/लीटर) का छिड़काव करें।
चित्तीदार सूँडी	क्रीम रंग के लार्वा फूलों और फलियों पर जाला बनाकर उन्हें अंदर से खाते हैं।	फ्लुबेन्डामाईड 20% डब्ल्यू.जी. (300 मिली/हे.) या स्पाइनोसैड 45एस.सी. (0.2 मिली/लीटर) का छिड़काव करें।
बिहार रोयेंदार सूँडी	छोटी सूँड़ियां झुंड में पत्तियों का हरा पदार्थ खाकर उन्हें झिल्ली जैसा बना देती हैं। पूरा पौधा पत्ती विहीन हो जाता है।	शुरुआती अवस्था में झुंड वाले पौधों को नष्ट करें। क्वीनालफॉस 25 ई.सी. (2.0 मिली/लीटर) का छिड़काव करें।
तना मक्खी	सूँड़ियां तने में सुरंग बनाती हैं। ऊपर की पत्तियां मुरझा जाती हैं और तना फूलकर सड़ने लगता है।	थायोमेथोक्साम 25 डब्ल्यू.जी. (5 ग्राम/किग्रा बीज) से बीज उपचार करें। इमिडाक्लोप्रिड (0.2 मिली/लीटर) का छिड़काव करें।
फली बग (पॉड बग)	फलियों से रस चूसते हैं जिससे दाने सिकुड़ जाते हैं और फलियां टेढ़ी–मेढ़ी हो जाती हैं।	मानोक्रोटोफास 36 एस.एल. (1.0 मिली.लीटर) या मेथोमाइल 40 एस. पी. 0.6 ग्राम/लीटर का छिड़काव करें।

जायद मक्काः अतिरिक्त आमदनी का बेहतर विकल्प

डॉ0 सुधांशु वर्मा[1] एवं डॉ0 के0 के0 सिंह[2]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ, [2]अध्यक्ष/वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र, रायबरेली–2

भारत में किसानों की आय बढ़ाने के लिए जायद मौसम की फसलों का विशेष महत्व है। जायद मक्का ऐसी ही एक फसल है जो रबी फसल की कटाई के बाद खाली पड़ी भूमि का उपयोग करके कम समय में अच्छी अतिरिक्त आमदनी प्रदान करती है। जायद मक्का लगभग 90 से 100 दिनों में तैयार हो जाती है। इस समय तापमान अनुकूल रहता है तथा सिंचाई की सुविधा होने पर इसकी उत्पादकता भी अधिक प्राप्त होती है। जायद मक्का की खेती का सबसे बड़ा लाभ यह है कि किसान रबी फसल जैसे आलू या सरसों की कटाई के बाद उसी खेत में मक्का लगाकर भूमि और समय का बेहतर उपयोग कर सकते हैं। इससे खेत खाली नहीं रहता और अतिरिक्त उत्पादन के माध्यम से किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। इसके अलावा जायद मक्का की मांग पशुचारा, दाना और उद्योगों में भी अधिक रहती है, जिससे इसका बाजार मूल्य भी अच्छा मिलता है।

जलवायु एवं तापमानः

मक्का एक उष्ण कटिबंधीय फसल है जिसे गर्म और नम जलवायु की आवश्यकता होती है। मक्का की अच्छी वृद्धि के लिए लगभग 21 से 32 डिग्री सेण्टीग्रेड तापमान उपयुक्त माना जाता है। बहुत अधिक ठंड या अत्यधिक गर्मी दोनों ही परिस्थितियाँ फसल की वृद्धि को प्रभावित करती हैं। जायद मौसम में तापमान अपेक्षाकृत अधिक रहता है, इसलिए मक्का की खेती के लिए सिंचाई की उचित व्यवस्था होना आवश्यक है। यदि फसल को पर्याप्त नमी मिलती रहे तो इस मौसम में मक्का की पैदावार अच्छी होती है।

मिट्टी एवं भूमि का चयनः

मक्का की खेती लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है, लेकिन अच्छी जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी इसके लिए सबसे उपयुक्त होती है। मिट्टी का pH मान लगभग 6.5 से 7.5 के बीच होना चाहिए। भारी या जल भराव वाली मिट्टी में मक्का की खेती नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे पौधों की जड़ों का विकास प्रभावित होता है ।

उन्नत किस्मों का चयनः

जायद मक्का की खेती के लिए उन्नत और अधिक उत्पादन देने वाली किस्मों का चयन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामान्यतः किसान संकर किस्मों का उपयोग करते हैं क्योंकि इनकी उत्पादकता अधिक होती है।

किस्में:

जायद मक्का की उन्नत संकर किस्मों में आई. एम. एच. 222, आई. एम. एच. 223, एल. क्यू. एम. एच.–1, डी.एम. आर.एच.–1308, डी.एच.एम.–117, डी.एच.एम.–121, पूसा बायोफोर्टिफाइड मक्का हाइब्रिड–1, पूसा एच क्यू.पी. एम.–5 इम्प्रूव्ड, पी.एम.एच.–10, पी.एम.एच.–11, पी.एम.एच.–17 तथा नरेन्द्र मक्का हाइब्रिड–1, डी.के.सी. 9144, डी.के.सी. 9120, रासी 3033, रासी 3444, पायनियर 3396, पायनियर 3501 प्रमुख हैं।

बुवाई का समयः

जायद मक्का की बुवाई सामान्यतः फरवरी के अंत से मार्च तक की जाती है। गेहूँ की कटाई के बाद खेत की तैयारी करके तुरंत बुवाई करना लाभदायक होता है। समय पर बुवाई करने से फसल को अनुकूल तापमान मिलता है जिससे पौधों की वृद्धि अच्छी होती है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

बीज दर एवं बुवाई की विधिः

बीज दरः

मक्का की खेती के लिए सामान्यतः 18–20 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है।

दूरीः

- ❖ पंक्ति से पंक्ति की दूरी–60 से 75 सेमी
- ❖ पौधे से पौधे की दूरी– 20 से 25 सेमी

बीज उपचारः

बीज जनित रोगों से बचाव के लिए बीज का उपचार करना आवश्यक है। बीज उपचार के लिए कार्बेन्डाजिम या कैप्टान का उपयोग किया जा सकता है। लगभग 2 ग्राम दवा प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचार करना चाहिए। इसके बाद बीज को छाया में सुखा कर बोना चाहिए। बीज उपचार से अंकुरण अच्छा होता है और प्रारंभिक अवस्था में पौधे स्वस्थ रहते हैं।

पोषक तत्व प्रबंधनः

मक्का की फसल में संतुलित पोषण प्रबंधन बहुत महत्वपूर्ण होता है। सामान्यतः मक्का के लिए निम्न मात्रा मेंउर्वरक की आवश्यकता होती है।

- ❖ नाइट्रोजन–120 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर
- ❖ फास्फोरस–60 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर
- ❖ पोटाश–60 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के समय और शेष मात्रा दो बराबर भागों में टॉप ड्रेसिंग के रूप में दी जाती है। यदि खेत में जिंक की कमी हो तो 25 किलो ग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर देना लाभदायक होता है।

सिंचाई प्रबंधनः

जायद मक्का की खेती में सिंचाई अत्यंत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इस मौसम में तापमान अधिक रहता है। फसल को सामान्यतः 4–5 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। महत्वपूर्ण सिंचाई अवस्थाएँ–अंकुरण के समय, घुटना अवस्था, फूल आने के समय और दाना बनने के समय यदि इन अवस्थाओं पर पर्याप्त नमी उपलब्ध हो तो फसल की उपज अच्छी प्राप्त होती है।

खरपतवार प्रबंधनः

जायद मौसम में मक्का की फसल में खरपतवार तेजी से बढ़ते हैं क्योंकि इस समय तापमान अधिक और नमी अनुकूल रहती है। यदि प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवारों का नियंत्रण नहीं किया जाता है तो वे फसल के साथ पानी, पोषक तत्व, प्रकाश तथा स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे मक्का की उपज में 30–40 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। मक्का की फसल में पहले 30–40 दिन खरपतवार नियंत्रण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इसलिए जायद मक्का में खरपतवार प्रबंधन अपनाना चाहिए ।

रासायनिक खरपतवार नियंत्रणः

1. प्री–इमर्जेन्स खरपतवारनाशीः– ये खरपतवारनाशी बुवाई के तुरंत बाद लेकिन खरपतवार उगने से पहले प्रयोग किए जाते हैं। इनका उद्देश्य खरपतवार के बीजों के अंकुरण को रोकना होता है। मुख्य प्री–इमर्जेन्स खरपतवारनाशी।

एट्राजीन 50 प्रतिशत डब्लू0 पी0:

- ❖ मात्राः 1.0–1.5 किग्रा सक्रिय तत्व/हेक्टेयर 500–600 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरंत बाद छिड़काव करना चाहिये।
- ❖ घास तथा चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर प्रभावी।

पाइरोक्सासल्फोन 85 प्रतिशत डब्लू0 जी0:

- ❖ मात्राः 100–120 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर 500–600 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरंत बाद छिड़काव करें।
- ❖ यह मुख्य रूप से घास वर्ग के खरपतवारों तथा कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण में प्रभावी है।

2.पोस्ट–इमर्जेन्स खरपतवारनाशी:

ये खरपतवारनाशी फसल और खरपतवार उगने के बाद प्रयोग किए जाते हैं। आधुनिक कृषि में कई उन्नत खरपतवारनाशी उपलब्ध हैं जो बहुत प्रभावी हैं।

टेम्बोट्रायोन 34.4 प्रतिशत एस0सी0:

- मात्रा रू 120–150 मिली0 हेक्टेयर
- बुवाई के 15–20 दिन बाद या 2–4 पत्ती अवस्था पर छिड़काव
- घास तथा चौड़ी पत्ती वाले दोनों प्रकार के खरपतवारों पर प्रभावी

मेसोट्रियोन 10 प्रतिशत + **एट्राजीन** 50 प्रतिशत डब्लू0 जी0:

- मात्रा: 800–1000 ग्राम/हेक्टेयर 500–600 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 20–25 दिन बाद या खरपतवार की 2–4 पत्ती अवस्था पर प्रयोग करें
- घास तथा चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण में प्रभावी है।

टॉपरेमेजोन:

- मात्रा: 25–30 मिली/हेक्टेयर बुवाई के 15–20 दिन बाद छिड़काव करना चाहिये।

हैलोसल्फ्यूरॉन:

- मात्रा: 60–70 ग्राम/हेक्टेयर
- विशेष रूप से मोथा के नियंत्रण में प्रभावी रासायनिक खरपतवार नियंत्रण

कीट प्रबंधन:

जायद मौसम में मक्का की फसल पर कई प्रकार के कीट आक्रमण करते हैं, जिनमें विशेष रूप से फॉल आर्मी वर्म, तना छेदक, कट वर्म और दीमक प्रमुख हैं। जायद मौसम में तापमान अधिक होने के कारण कीटों का प्रकोप तेजी से बढ़ता है। यदि समय पर नियंत्रण न किया जाए तो ये कीट मक्का की उपज को 30–50 प्रतिशत तक कम कर सकते हैं। इसलिए जायद मक्का में समेकित कीट प्रबंधन अपनाना आवश्यक है, जिसमें सांस्कृतिक, जैविक तथा रासायनिक सभी विधियों का उपयोग किया जाता है।

1.फॉल आर्मी वर्म:

यह मक्का का सबसे खतरनाक कीट माना जाता है और हाल के वर्षों में भारत में इसका प्रकोप तेजी से बढ़ा है। इसके लार्वा पत्तियों को खुरचकर खाते हैं और बाद में पौधे के शीर्ष में घुसकर नुकसान करते हैं।

लक्षण:

- पत्तियों पर छेद और खुरचे हुए निशान दिखाई देते हैं
- पौधे के शीर्ष में भूरा मल दिखाई देता है
- लार्वा के सिर पर उल्टा "Y" आकार का निशान होता है।

रासायनिक नियंत्रण:

- क्लोरान्ट्रानिलिप्रोल 18.5 प्रतिशत ई0सी0 150–200 मि.ली./हेक्टेयर
- इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 प्रतिशत एस0जी0 200 ग्राम/हेक्टेयर
- स्पिनेटोराम 11.7 प्रतिशत एस0सी0 100 मि.ली./हेक्टेयर

2. तना छेदक:

यह कीट मक्का के तने में छेदकर के अंदर प्रवेश करता है और पौधे को खोखला कर देता है जिससे पौधे सूख जाते हैं।

लक्षण:

- पत्तियों में छेद, पौधों का सूखना तथा तने के अंदर सुरंग बनाना इस कीट की पहचान के मुख्य लक्षण हैं।

नियंत्रण:

- ❖ क्लोरान्ट्रानिलिप्रोल 18.5 प्रतिशत एस0सी0 150–200 मि.ली./हेक्टेयर
- ❖ कार्बोफ्यूरान 3 CG –15 किग्रा/हेक्टेयर

3. कट वर्म:

यह कीट छोटे पौधों को जमीन की सतह से काट देता है जिससे पौधे गिर जाते हैं।

नियंत्रण:

- ❖ लैम्ब्डा सायहेलोथ्रिन 5 प्रतिशत ई0सी0–300 मिली/हेक्टेयर
- ❖ क्लोरपायरीफॉस 20 प्रतिशत ई0सी0–1.5 लीटर/हेक्टेयर

4. दीमक:

दीमक मक्का की जड़ों और तने को नुकसान पहुँचाती है जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं।

नियंत्रण:

- ❖ फिप्रोनिल 5 प्रतिशत एस0 सी0 1 लीटर/हेक्टेयर
- ❖ क्लोरपायरीफॉस 20 प्रतिशत ई0सी0 2.5 लीटर/हेक्टेयर

रोग प्रबंधन:

जायद मौसम में तापमान अधिक और कभी–कभी नमी की स्थिति होने के कारण मक्का की फसल में कई प्रकार के रोग लग सकते हैं। यदि इन रोगों का समय पर नियंत्रण नहीं किया जाए तो उत्पादन और गुणवत्ता दोनों प्रभावित होते हैं।

1. **टरसीकम लीफ ब्लाइट:**

लक्षण:

- ❖ पत्तियों पर लम्बे, अंडाकार या धूसर रंग के धब्बे बन जाते हैं।
- ❖ धब्बे धीरे–धीरे बड़े होकर पूरी पत्ती को प्रभावित कर सकते हैं।
- ❖ गंभीर स्थिति में पत्तियाँ सूख जाती हैं और प्रकाश संश्लेषण कम हो जाता है।

रासायनिक नियंत्रण:

- ❖ एजाक्सीस्ट्रोबिन 23 प्रतिशत एस0 सी0– 200 मिली/हेक्टेयर
- ❖ प्रोपिकोनाजोल 25 प्रतिशत ई0सी0–500 मिली/हेक्टेयर
- ❖ टेबुकोनाजोल +ट्राइफ्लॉक्सीस्ट्रोबिन – 300 ग्राम/हेक्टेयर

पहले लक्षण दिखाई देने पर 10–12 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

1. **मेडिस लीफ ब्लाइट:**

लक्षण:

- ❖ पत्तियों पर पीले–भूरे रंग के छोटे धब्बे बनते हैं।
- ❖ बाद में ये धब्बे लम्बे होकर पत्तियों को सुखा देते हैं।
- ❖ अधिक प्रकोप होने पर पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

रासायनिक नियंत्रण:

- ❖ मैनकोजेब 75 प्रतिशत डब्लू0पी0–2.5 ग्राम/लीटर पानी
- ❖ हेक्साकोनाजोल 5 प्रतिशत एस0सी0–1 मिली/लीटर
- ❖ एजाक्सीस्ट्रोबिन + टेबुकोनाजोल 300–400 ग्राम/हेक्टेयर

2. **पट्टीदार पत्ती एवं आवरण झुलसा रोग (बैडेड लीफ एंड शीथ ब्लाइट):** यह रोग विशेष रूप से अधिक आर्द्रता और गर्म तापमान की स्थिति में तेजी से फैलता है। यदि समय पर नियंत्रण न किया जाए तो यह रोग मक्का की उपज को काफी हद तक कम कर सकता है।

लक्षण:

- ❖ इस रोग के प्रारंभिक लक्षण पत्तियों और पत्ती आवरण (शीथ) पर दिखाई देते हैं।

- ❖ शुरुआत में पत्ती और शीथ पर हल्के भूरे या धूसर रंग के छोटे धब्बे दिखाई देते हैं।
- ❖ समय के साथ ये धब्बे लंबे और चौड़े होकर पट्टी के रूप में विकसित हो जाते हैं।
- ❖ संक्रमित भाग पर गोल या अनियमित आकार के धब्बे बनने लगते हैं।
- ❖ रोग बढ़ने पर ये धब्बे धीरे–धीरे बड़े होकर पूरी पत्ती को प्रभावित करते हैं।

रासायनिक नियंत्रणः

रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देने पर निम्न फफूंद नाशकों का छिड़काव करें।

- ❖ हेक्साकोनाजोल 5 प्रतिशत ई0सी0 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी
- ❖ प्रोपिकोनाजोल 25 प्रतिशत ई0सी0 1 मिली प्रति लीटर पानी 10 से 12 दिन के अंतराल पर 2–3 छिड़काव करने से रोग का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है।

कटाई एवं मड़ाईः

जब मक्का के भुट्टों के ऊपर की पत्तियाँ सूखने लगें और दानों में लगभग 25–30 प्रतिशत नमी रह जाए तब फसल की कटाई करनी चाहिए। कटाई के बाद भुट्टों से दाने निकालकर धूप में अच्छी तरह सुखाना चाहिए। भंडारण के लिए दानों की नमी लगभग 8–10 प्रतिशत होनी चाहिए।

उपजः

उन्नत तकनीकों का उपयोग करने पर जायद मक्का से लगभग 60–70 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

गर्मी में करें दूधिया मशरूम की खेती

डॉ0 विश्व विजय रघुवंशी
विषय वस्तु विशेषज्ञ (पादप सुरक्षा), कृषि विज्ञान केन्द्र, रायबरेली–2

गर्मी के मौसम में उगाये जाने वाले मशरूम में दूधिया मशरूम महत्वपूर्ण है। इस मशरूम की खेती अधिक तापमान में आसानी से की जा सकती है। दूधिया मशरूम की खेती के लिए 30 से 35 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 80 से 90 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। अधिक तापमान (38 से 40 डिग्री सेल्सियस) पर भी यह मशरूम अच्छा पैदावार देती है। वैज्ञानिक तरीके अपनाकर किसान गर्मी के मौसम में भी आसानी से दूधिया मशरूम उगाकर अच्छा लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

दूधिया मशरूम उगाने के लिए माध्यम का चुनावः

मिल्की या दूधिया मशरूम को कृषि फसलों से प्राप्त फसल अवशेषों जैसे भूसा, पुआल, सूखे डंठल व गन्ना की खोई आदि पर आसानी से उगाया जा सकता है। इस मशरूम की खेती के लिए भूसा या पुआल का ज्यादा इस्तेमाल किया जाता है। ध्यान रहे कि माध्यम नया व सूखा होना चाहिए और बरसात में भीगा न हो।

माध्यम का उपचारः

माध्यम को हानिकारक सूक्ष्मजीवों से बचानें के लिए निम्नलिखित में से किसी एक विधि से उपचारित करके ही इस्तेमाल किया जाता है।

(क) गर्म पानी द्वारा उपचारः

इस विधि में भूसा या पुआल को जूट या कपड़े की छोटी थैलियों में भरकर पानी में अच्छी तरह से कम से कम 12 से 14 घंटे तक डुबोकर रखते हैं। ताकि भूसा या पुआल अच्छी तरह से पानी सोख ले। इसके बाद गीले भूसे या पुआल से भरी थैलियों को उबलते हुए गर्म पानी में 35 से 40 मिनट तक डुबाकर रखते हैं। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि भूसा डुबोने के बाद पानी 40 मिनट तक उबलता रहना चाहिए, तभी माध्यम का उपचार सफलतापूर्वक हो सकता है। इसके बाद भूसे को गर्म पानी से निकाल कर फर्श पर फैला देना चाहिए ताकि अतिरिक्त पानी बाहर निकल जाये तथा भूसा ठण्डा हो जाये। भूसे में 60 से 70 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। नमी का अन्दाजा भूसे को मुट्ठी में कस कर दबाकर लगाया जा सकता है। दबाने पर यदि भूसे से पानी न निकले और हथेली नम हो जाये तो समझना चाहिए कि भूसे में नमी ठीक है। इस तरह उपचारित माध्यम बीजाई के लिये तैयार है।

(ख) रासायनिक उपचारः

गर्म पानी उपचार विधि को बड़े स्तर पर करनें में अधिक मेहनत व अधिक समय लगता है अतः विकल्प के तौर पे रासायनिक विधि को अपनाया जा सकता है, जिसका तरीका निम्नवत् है।

- ❖ किसी ड्रम या सिमेंट के नाद में 80 से 90 लीटर पानी लें तथा उसमें 10 किलोग्राम भूसा या पुआल भिगो दें।
- ❖ एक बाल्टी में 10 लीटर पानी लें और उसमें 10 ग्राम बॉविस्टीन या 10 ग्राम थीरम साथ में 10 मि0ली0 फार्मेलीन मिलायें। इस घोल को ड्रम में भिगाये गये माध्यम (भूसा/पुआल) पर उड़ेल दें और ड्रम को पॉलीथीन से अच्छे से ढक दें, 10 से 12 घंटे बाद ड्रम से माध्यम (भूसा/पुआल) को बाहर निकाल कर साफ फर्श पर फैला दें, ताकि अतिरिक्त पानी निकल जाए। इस प्रकार प्राप्त गीला माध्यम बीजाई के लिए तैयार है।

बीजाई करना (स्पानिंग):

उपरोक्त बताई गई किसी एक विधि से माध्यम को उपचारित कर उसमें 5 प्रतिशत (गीले माध्यम के वजन के अनुसार) की दर से बीज मिलायें यानि एक किलोग्राम गीले माध्यम में 45 से 50 ग्राम बीज मिलायें। सतह विधि से ही बीजाई करना सबसे अच्छा रहता है।

सतह विधि से बीजाई करने के लिए पहले पॉलीथीन के बैग, जिसका आकार 15 इंच चौड़ा तथा 20 इंच लम्बा हो, में एक परत माध्यम (भूसा/पुआल) की बिछाये फिर उसके ऊपर बीज (स्पान)

को बिखेर दें। उसके ऊपर फिर से माध्यम की एक परत विछायें। इसी तरह 3–4 सतह में बीजाई की जाती है। फिर बैगों को एक अंधेरे कमरे में रख देते हैं तथा लगभग 3 सप्ताह तक 30 से 35 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 80 से 90 प्रतिशत नमी (आर्द्रता) बनाये रखें।

केसिंग मिश्रण बनाना एवं केसिंग परत बिछानाः

बीजाई किये गये थैलों में 2 सप्ताह बाद कवक जाल भूसे में फैल जाता है तथा भूसे (माध्यम) का रंग सफेद दिखाई देने लगता है इसी अवस्था को केसिंग परत बिछाने के लिए उपयुक्त माना जाता है।

केसिंग मिश्रण, केसिंग करने के 10–12 दिन पहले ही तैयार करते हैं। केसिंग मिश्रण तैयार करने के लिए 3/4 भाग दोमट मिट्टी व सड़ी गोबर की खाद बराबर मात्रा में तथा 1/4 भाग बालू लेते हैं। अब इस मिश्रण में वजन का 8 से 10 प्रतिशत चाक पाउडर या चूना मिलाते हैं जिससे मिश्रण की अम्लीयता बदल कर क्षारीय (8 पी.एच.) हो जाये।

मिश्रण को 2 प्रतिशत फार्मेलिन व 0.1 प्रतिशत बाविस्टन के घोल से गीला करके ऊपर से पॉलीथीन से ढक देना चाहिए। केसिंग करने के 24 घण्टे पहले केसिंग मिश्रण से पॉलीथीन हटा दें तथा मिश्रण को उलट–पलट दें ताकि फार्मेलीन की गंध निकल जाये। मिश्रण को किसी बोरे या थैले में भरकर भाप द्वारा एक घंटे तक स्ट्रलाईज (निर्जमीकरण) करें।

केसिंग के बाद रखरखावः

केसिंग प्रक्रिया पूरा करने के बाद मशरूम की ज्यादा देखभाल करनी पड़ती है। थैलों का प्रतिदिन निरीक्षण करें। थैलों में नमी का निरंतर जायजा लेते रहें तथा आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त मशरूम उत्पादन के लिए हवा का आदान–प्रदान होना अति आवष्यक है। इसके लिए उत्पादन कक्ष में रोशनदार खिड़की होना आवश्यक है।

मिल्की (दूधिया) मशरूम की तुड़ाई व उपजः

मशरूम का छत्ता जब 6 से 7 सेमी0 व्यास का हो जाये तो यह तुड़ाई के लायक हो जाता है और इसे घुमाकर तोड़ लेना चाहिए। मशरूम को पॉलीथीन या पी0पी0 बैग जिसमें छेद हो, पैक कर लेना चाहिए। मिल्की मशरूम की जैव दक्षता 100 प्रतिशत तक होती है मतलब कि एक किग्रा0 सूखे भूसे या पुआल से एक किग्रा0 ताजा मशरूम प्राप्त होता है।

उपरोक्त वैज्ञानिक तरीके अपनाकर मशरूम उत्पादक किसान गर्मी व वर्षा ऋतु में दूधिया मशरूम का उत्पादन कर काफी अच्छा लाभ प्राप्त कर सकते हैं तथा ठंडी के दिनों में ढींगरी या बटन मशरूम उगाकर पूरे वर्ष आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

प्राकृतिक खेती में रोग प्रबंधन

डॉ0 उत्कर्ष उपाध्याय, डॉ0 दिपके शीतल, डॉ0 हिमांशु त्रिवेदी, डॉ0 जीतेन्द्र ओझा एवं डॉ0 शुभम बाजपेयी
छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

प्राकृतिक खेती (Natural Farming) एक ऐसी कृषि पद्धति है जिसमें रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग नहीं किया जाता। इसका उद्देश्य मिट्टी, जल, वायु और जीव–जंतुओं के प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखते हुए फसल उत्पादन करना है। रोग प्रबंधन इसमें एक महत्वपूर्ण पहलू है, क्योंकि बिना रसायनों के भी फसल को स्वस्थ रखना आवश्यक है। वर्तमान परिदृश्य में कृषि क्षेत्र में अनेक चुनौतियाँ हैं जैसे कि मिट्टी की उर्वरा शक्ति कम होना, पर्यावरण प्रदूषण, जल संकट तथा किसानों की बढ़ती लागत प्रमुख हैं। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी, जल और वायु पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इन समस्याओं के समाधान के रूप में प्राकृतिक खेती एक टिकाऊ और पर्यावरण–अनुकूल कृषि प्रणाली के रूप में उभर कर सामने आई है। प्राकृतिक खेती प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित कर कृषि उत्पादन को बढ़ाने की पद्धति है। इसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और आनुवंशिक रूप से परिवर्तित बीजों का उपयोग नहीं किया जाता, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों और जैविक प्रक्रियाओं का उपयोग करके मिट्टी की उर्वरता और जैव विविधता को बनाए रखा जाता है। भारत में इस पद्धति को शून्य बजट प्राकृतिक खेती के रूप में भी जाना जाता है, जिसे कृषि वैज्ञानिक सुभाष पालेकराने लोकप्रिय बनाया। प्राकृतिक खेती का एक महत्वपूर्ण पहलू रोग प्रबंधन है। रोगों के कारण फसल उत्पादन में भारी हानि होती है, इसलिए फसलों को स्वस्थ रखने और उत्पादन बढ़ाने के लिए प्राकृतिक और जैविक उपायों का उपयोग आवश्यक है।

प्राकृतिक खेती के मुख्य सिद्धांतः

प्राकृतिक खेती कुछ मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित है, जो कृषि प्रणाली को टिकाऊ और पर्यावरण–अनुकूल बनाते हैं।

- **रसायनों का परित्याग**–इसमें रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के स्थान पर प्राकृतिक खाद और जैविक घोलों का उपयोग किया जाता है।
- **मल्चिंग (आच्छादन)**–मिट्टी की नमी बनाए रखने और पोषक तत्वों को सुरक्षित रखने के लिए खेत में जैविक पदार्थों का उपयोग किया जाता है।
- **देशी बीजों का उपयोग**–स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल देशी बीजों का प्रयोग किया जाता है।
- **गौ आधारित कृषि**–गोबर और गौमूत्र से बने उत्पाद जैसे जीवामृत और बीजामृत का उपयोग किया जाता है।
- **न्यूनतम जुताई**–मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को सुरक्षित रखने के लिए न्यूनतम जुताई की जाती है।
- **मिश्रित खेती और फसल चक्र**–विभिन्न फसलों को साथ उगाकर कीट–रोग नियंत्रण और उत्पादन वृद्धि सुनिश्चित की जाती है।

इन सिद्धांतों के कारण प्राकृतिक खेती न केवल उत्पादन को बढ़ाती है बल्कि पर्यावरणीय संतुलन भी बनाए रखती है।

प्राकृतिक खेती के कुछ प्रमुख स्तंभः

1. बीजामृत–बीजामृत एक जैविक घोल है जिसका उपयोग बीजों के उपचार के लिए किया जाता है। इसमें देशी गाय का गोबर, गौमूत्र, चूना और खेत की मिट्टी का उपयोग किया जाता है। बीजों को इस घोल में भिगोने से उनका अंकुरण बेहतर होता है तथा वे फफूंद और बैक्टीरियल रोगों से सुरक्षित रहते हैं। इससे पौधों की प्रारंभिक वृद्धि मजबूत होती है और फसल स्वस्थ बनती है।

2. जीवामृत–जीवामृत एक पारंपरिक जैविक घोल है जो मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बढ़ाता है। इसे गोबर, गौमूत्र, गुड़, बेसन और मिट्टी के मिश्रण से तैयार किया जाता है। यह मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाता है, मिट्टी की संरचना सुधारता है तथा पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करता है। जीवामृत का उपयोग सिंचाई या छिड़काव के माध्यम से किया जाता है।

3. आच्छादन–आच्छादन में मिट्टी को सूखी पत्तियों, घास या फसल अवशेषों से ढक दिया जाता है। इससे मिट्टी की नमी बनी रहती है, तापमान संतुलित रहता है और खरपतवार का नियंत्रण होता है। साथ ही जैविक पदार्थ धीरे–धीरे सड़कर मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाते हैं।

4. वाफसा–वाफसा का अर्थ है मिट्टी में नमी और वायु का संतुलन बनाए रखना। अत्यधिक सिंचाई से बचकर और आच्छादन का उपयोग करके मिट्टी में ऐसी स्थिति बनाई जाती है जिसमें पौधों की जड़ों को पर्याप्त ऑक्सीजन और नमी मिल सके। इससे जड़ों का विकास बेहतर होता है और फसल उत्पादन में वृद्धि होती है।

प्राकृतिक खेती में जैव–नियंत्रण की भूमिका:

कृषि में रोग प्रबंधन के लिए जैव–नियंत्रण एक महत्वपूर्ण तकनीक है। इसमें रोग जनकों और कीटों को नियंत्रित करने के लिए लाभकारी सूक्ष्मजीवों, कीटों और अन्य जीवों का उपयोग किया जाता है। यह रासायनिक नियंत्रण की तुलना में अधिक सुरक्षित और पर्यावरण–अनुकूल है।

जैव नियंत्रण मुख्यतः दो प्रकार का होता है:

1. प्रत्यक्ष जैव नियंत्रण–इसमें जैव एजेंट सीधे रोगजनक पर हमला कर उसे नष्ट करते हैं।

2. अप्रत्यक्ष जैव नियंत्रण–इसमें जैव एजेंट पौधों की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं।

प्रमुख जैव नियंत्रण एजेंट:

1. ट्राइकोडर्मा–ट्राइकोडर्मा एक लाभकारी फफूंद है जो मिट्टी में स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। यह जड़ सड़न और अन्य फफूंदजनित रोगों को नियंत्रित करता है। ट्राइकोडर्मा तेजी से बढ़ता है और रोग जनक फफूंदों के साथ प्रतिस्पर्धा करके उन्हें नष्ट कर देता है। यह पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध बनाकर उनकी वृद्धि और पोषण को भी बढ़ाता है।

2. *बैसिलस थुरिजिएन्सिस*–*बैसिलस थुरिजिएन्सिस* एक ग्राम–पॉजिटिव बैक्टीरिया है जो कीट नियंत्रण में अत्यंत प्रभावी है। यह प्रोटीन का उत्पादन करता है जो कीटों की आंत को क्षतिग्रस्त कर उन्हें नष्ट कर देता है। यह जैविक कीटनाशक के रूप में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है और मनुष्यों तथा लाभकारी जीवों के लिए सुरक्षित माना जाता है।

3. *स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस*–यह एक लाभकारी बैक्टीरिया है जो पौधों की जड़ों के आसपास सक्रिय रहता है। यह पौधों में Induced Systemic Resistance (ISR) को सक्रिय करता है, जिससे पौधे रोगजनकों के प्रति अधिक प्रतिरोधी बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह एंटीबायोटिक पदार्थों का उत्पादन कर रोग जनकों के विकास को रोकता है।

प्राकृतिक रोग प्रबंधन के अन्य उपाय:

प्राकृतिक खेती में रोग नियंत्रण के लिए कई अन्य पारंपरिक और जैविक उपाय भी अपनाए जाते हैं:

- **नीम का अर्क और तेल**–यह कीटों और फफूंद रोगों को नियंत्रित करता है।
- **लहसुन और मिर्च का घोल**–प्राकृतिक कीटनाशक के रूप में कार्य करता है।
- **फसल चक्र और अंतर फसल**–विभिन्न फसलों को क्रम से या साथ उगाने से रोग फैलने की संभावना कम होती है।
- **सुगंधित पौधे**–तुलसी, गेंदा और पुदीना जैसे पौधे कीटों को दूर रखते हैं।
- **प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण**–पक्षी, केंचुए और लाभकारी कीट हानिकारक कीटों को नियंत्रित करते हैं।

प्राकृतिक खेती में रोग प्रबंधन का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि यह कृषि को पर्यावरण–अनुकूल, टिकाऊ और सुरक्षित बनाता है। इसमें रासायनिक कीटनाशकों के स्थान पर जैविक एवं प्राकृतिक उपायों का उपयोग किया जाता है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण कम होता है और पारिस्थितिक संतुलन बना रहता है। साथ ही मिट्टी की उर्वरता और उसमें उपस्थित लाभकारी सूक्ष्मजीव सुरक्षित रहते हैं, जो फसल की वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं। प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग से किसानों की उत्पादन लागत भी घटती है। इसके अतिरिक्त, रसायन–मुक्त फसलें मानव स्वास्थ्य के लिए अधिक सुरक्षित और

पोषक होती हैं। इस प्रकार प्राकृतिक खेती जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी सहायक सिद्ध होती है।

चुनौतियाँ और समाधानः

हालाँकि प्राकृतिक खेती के अनेक लाभ हैं, फिर भी इसके व्यापक प्रसार में कुछ चुनौतियाँ है, जैसे किसानों में जागरूकता की कमी, तकनीकी जानकारी का अभाव। इन समस्याओं के समाधान के लिए किसानों को प्रशिक्षण, स्थानीय स्तर पर जैविक संसाधनों की उपलब्धता तथा सरकारी योजनाओं का समर्थन आवश्यक है।

निष्कर्षः

प्राकृतिक खेती एक टिकाऊ और पर्यावरण–अनुकूल कृषि प्रणाली है, जो मिट्टी की उर्वरता, जैव विविधता और किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसमें रोग प्रबंधन के लिए जैविक और प्राकृतिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जैसे जीवामृत, बीजामृत, आच्छादन, वाफसा तथा विभिन्न जैव–नियंत्रण एजेंट। इन तकनीकों के माध्यम से फसलों को रोगों और कीटों से सुरक्षित रखा जा सकता है, साथ ही पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य की रक्षा भी की जा सकती है। भविष्य में टिकाऊ कृषि विकास के लिए प्राकृतिक खेती और जैविक रोग प्रबंधन को व्यापक स्तर पर अपनाना अत्यंत आवश्यक है। यह न केवल कृषि उत्पादन को सुरक्षित बनाएगा बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ और समृद्ध पर्यावरण भी सुनिश्चित करेगा।

आम में लगने वाले प्रमुख कीट, रोग एवं उनका प्रबन्धन

डॉ0 भूपेन्द्र कुमार सिंह[1], डा0 विनोद प्रकाश[2] एवं डॉ0 अवनींद्र कुमार तिवारी[3]
कृषि विज्ञान केन्द्र, इटावा, औरैया एवं कन्नौज

आम की फसल को उनमें लगने वाली कीटों एवं बीमारियों से बहुत नुकसान पंहुचता है यदि हम समय पर इन कीटों व बीमारियों की पहचान करने में चूक गये और उनका समाधान नहीं किया तो हमारी आम की फसल को बहुत नुकसान होता है। आम की फसल में लगने वाले कुछ मुख्य कीट, बीमारियों तथा उनसे बचाव के उपाय निम्नवत है।

प्रमुख कीटः

आम का तना बेधक (Mango stem borer)

Scientific name: *Betocera rufomaculata*

यह आम के पौधों का एक हानिकारक कीट है। इस कीट का आक्रमण यदि किसी पौधे पर हो जाता है और उसका उपचार नहीं किया गया तो वह पौधा धीरे–धीरे सूख जाता है। इस कीट का प्रौढ़ लगभग 5 सेमी लम्बा धूसर रंग का होता है। इसकी पूर्ण विकसित गिडार लगभग 7–8 समी लम्बी होती है तथा उसका सिर गहरे रंग का होता है। इस कीट की सूंडी तने में छेद करके सुरंग बनाती है और उसके अन्दर रहकर अन्दर के भाग को खाती है जिससे पोधा सूख जाता है।

प्रबन्धनः

इस कीट के नियन्त्रण के लिये एक तार लेते है और उससे पौधों मे बनी हुई सुरंगों को साफ कर लेते है। फिर रूई के फाहे को पेट्रोल या मिट्टी के तेल में जो भी आसानी से उपलब्ध हो जाये उसमें डुबों लेते है। इन रूई के फाहों को इन सुरंगों में डालकर गीली मिट्टी से बंद कर देते हैं जिससे ये कीट की सूंडी उसी सुरंग के अन्दर समाप्त हो जाती है और हमारा आम का बाग सुरक्षित हो जाता है।

आम का भुनगा (Mango leaf hopper)

Scientific name: *Amaritodus atkinsoni, Idioscopus clypeatis, Idioscopus niveosparsus*

इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ कीट दोनों ही पत्तियों व फूलों का रस चूस लेते है जिससे नई पत्तियाँ व फूल सूख जाते हैं और गिर जाते हैं जबकि छोटे–छोटे फल भी सूख कर गिर जाते हैं। ये कीट एक प्रकार का मधु स्राव भी करते हैं जिससे पत्तियों व फूलों पर काले रंग की फफूंदी सी जम जाती है तथा छोटे–छोटे फल व पुष्पक्रम हवा चलने से टूट कर गिर जाते है। इससे श्वसन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस कीट का प्रकोप मार्च के माह से लेकर जून तक रहता है। यह कीट हल्के हरे पीले रंग के होते हैं तथा प्रौढ़ आगे से चौडा व पीछे से पतला होता है यह आम का सर्वाधिक हानि पंहुचाने वाला कीट है।

प्रबन्धन : इस कीट से बचाव के लिए कार्बारिल 50 डब्ल्यूपी 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर या क्यूनालफास 2 मिली प्रति लीटर पानी में मिलाकर तीन छिडकाव करते हैं पहला छिडकाव बौर आते समय दूसरा छिडकाव जब फल मटर के दाने के बराबर हो तथा तीसरा छिडकाव दूसरे छिडकाव के 15 दिन बाद करते हैं तो इस कीट का नियन्त्रण हो जाता है।

गुझिया कीट या कढ़ी कीट (Mango mealy bug)

Scientific name: *Drosicha mangiferae*

यह कीट आम के अलावा अन्य पौधों को भी नुकसान पंहुचाता है। इस कीट के निम्फ (शिशु) तथा मादा प्रौढ पौधों की कोमल शाखाओं व वृन्तों से रस चूस लेते हैं। जिससे वे सूखने लगती हैं तथा फल भी कम मात्रा में लगते हैं। जिस टहनी पर फल लगते हैं वे कमजोर हो जाती हैं तथा धीमी हवा चलते ही टूट कर गिर जाती हैं जिससे उपज बहुत कम हो जाती है। यह कीट एक प्रकार का मधु स्राव (चिपचिपा पदार्थ) भी निकालता है जिससे उन पर काले रंग की फंफूंदी उग आती है। इस कीट की मादा अप्रैल मई माह में पेड से उतर आती है तथा जमीन में लगभ 15 सेमी गहराई तक थैली में अण्डे

देती है। इन अण्डों से दिसम्बर माह में छोटे–2 शिशु निकलते हैं जो पेडों के ऊपर धीरे–धीरे रेंग कर चढ़ते हैं और यही प्रक्रिया प्रत्येक वर्ष दोहराई जाती है।

प्रबन्धनः 1. इस कीट की रोकथाम के लिये मई–जून के महीने में पौधों के चारो तरफ खुदाई करनी चाहिए जिससे अण्डे व लार्वा तेज धूप में नष्ट हो जाते है तथा कुछ चिडियों आदि के द्वारा नष्ट कर दिये जाते है।

2. पौधे के तने पर 400 गेज की पालीथीन की 25 सेमी चौडी पट्टी 4 भाग ग्रीस एवं एक भाग गोंद मिलाकर दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में बांध दे जिससे ये ऊपर न चढ सके

3. यदि कुछ कीट चढ़ गये हों तो क्युनालफॉस 2.0 मिली/ली0 पानी की दर से मिलाकर छिडकाव करना चाहिए।

छाल खाने वाली इल्ली (Bark eating caterpillar)

Scientific name: ***Inderbela quadrinotata***

इस कीट के प्रौढ मई जून में अण्डे देते हैं जिनसे इल्ली निकलती है ये इल्ली दो टहनियों के जोड़ के पास ही छेद बनाती है तथा उसमें छुपी रहती है। बाद में ये गिडार पौधों की छाल को खाना शुरू कर देती है। जिस स्थान पर ये रहकर छाल को खाती है वहां पर एक लाइन में छाल का बुरादा सा पौधों से चिपका हुआ सा दिखलाई पड़ता है। ये बुरादा इस कीट का मल होता है जिससे ये आसानी से पहचाना जा सकता है।

प्रबन्धन : इस कीट की रोकथाम के लिये सबसे पहले इस बुरादेनुमा भाग को हटाते हैं तथा इसको फटे हुये टाट या बोरे से साफ कर लेते हैं। अब इस छिद्र में रूई के फाहों को जिनको कि मिट्टी के तेल या पेट्रोल में डुबोया गया होता है भरकर अन्दर तक डालते हैं फिर उसको गीली मिट्टी से बन्द कर देते हैं जिससे ये कीट की गिडार अन्दर ही अन्दर समाप्त हो जाती है।

आम की फल मक्खी या डासी मक्खी (Mango fruit fly)

Scientific name: ***Bactrocera dorsalis***

यह आम में लगने वाली हानिकारक मक्खी है क्योंकि जब आम के फल पकने की अवस्था में होते हैं तो इस कीट का प्रकोप होता है। इस कीट की मादा फलों के छिलकों के अन्दर अण्डे देती है। इन अण्डों से मैगट निकलते हैं और वे फलों के गूदे को अन्दर ही अन्दर खाते रहते हैं जिसकी वजह से फल की गुणवत्ता खराब होती है तथा उसका बाजार मूल्य भी नहीं मिलता है। प्रभावित फल सड़कर गिर जाते हैं। इसका आक्रमण जून से अगस्त तक होता है।

प्रबन्धनः

1. प्रभावित फलों को इकट्ठा करके उन्हे जमीन के अन्दर दबा देना चाहिए।
2. इसके नियन्त्रण के लिए यौनगन्ध ट्रैप का प्रयोग करना चाहिए। इस ट्रैप में मिथाइल यूजीनाल 0.1 प्रतिशत तथा मैलाथियान 0.1 प्रतिशत के घोल को प्लास्टिक बोतलों में डालकर ट्रैप बनाते है तथा 10 ट्रैप/है0 की दर से पेडों पर लटका देते हैं जिससे इस कीट से बचाव किया जा सकता है।

प्रमुख रोगः

सफेद चूर्णी रोग (Powdery mildew)

Causal organism: ***Oidium mangiferae***

यह रोग एक फफूंद के द्वारा होता है। यह रोग मुख्यतः मार्च माह में शुरू होता है क्योंकि इस समय मौसम इस बीमारी के अनुकूल रहता है। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम नई पत्तियों, फूलों एवं पुष्प वृन्तों पर दिखलाई पड़ते हैं। इस रोग में पुष्पों व वृन्तों पर सफेद रंग का चूर्ण जमा हो जाता है जिससे फूलों का विकास रूक जाता है और फूल छोटे–छोटे रह जाते हैं तथा अन्त में पीले पडकर सूख जाते हैं और गिर जाते हैं जिससे उपज कम हो जाती है।

प्रबन्धनः इस रोग से बचाव हेतु घुलनशील गंधक का छिडकाव लाभप्रद पाया गया है। घुलनशील गंधक (सल्फर युक्त फंजीसाइड) की 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर की दर से घोलकर तीन छिडकाव करें।

1. पहला छिडकाव बौर आने के समय

2. दूसरा छिडकाव पहले छिडकाव के 10–15 दिन बाद करना चाहिए तथा
3. तीसरा छिडकाव दूसरे छिडकाव के 10–15 दिन बाद कर दें तो इस रोग की सम्भावना कम हो जाती है।

श्यामव्रण रोग (Anthracnose)

Causal organism: *Colletotrichum gleosporiodes*

यह रोग भी फफूंद जनित रोग है। यह रोग *कोलेटोट्राइकम* नाम फफूंद से होता है। इस रोग में पत्तियों,, टहनियों पर गहरे काले भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद में आपस में मिलकर बडे हो जाते हैं जिससे पत्तियां सूखने लगती है और गिर जाती है। टहनियां भी सूखने लगती हैं तथा फलों पर काले रंग के धब्बे बनते हैं जिससे वे बदरंग हो जाते हैं और बाजार मूल्य भी कम हो जाता है।

प्रबन्धनः इस रोग से बचाव हेतु निम्न प्रक्रिया अपनानी चाहिये।

1. सूखी व रोगग्रसित टहनियों को काटकर जला देते है।
2. इसके पश्चात कापर आक्सीक्लोराइड की 3 ग्राम मात्रा प्रति ली0 पानी की दर से तीन छिडकाव फरवरी, अप्रैल एवं सितम्बर अक्टूबर माह में करने से इस रोग से बचाव होता है।

डाइबैक या उल्टा सूखा रोग (Die back)

Causal organism: *Lasiodiplodia theobromae or Botryodiplodia theobromae*

आम में लगने वाला यह एक घातक रोग है। यह रोग भी फफूंद जनित होता है। इस रोग में पौधों की टहनियां ऊपर से नीचे की ओर सूखना प्रारम्भ कर देती हैं तथा पत्तियां पीली पडने लगती हैं तथा उनके किनारे ऊपर की ओर मुडने लगते हैं जिससे वे बाद में सूखकर गिर जाती हैं और फिर धीरे–धीरे पूरा पौधा सूख जाता है।

प्रबन्धनः इस रोग से बचाव के लिये रोग ग्रसित टहनियों को थोडे स्वस्थ भाग के साथ काट देते हैं इसके पश्चात कटे हुये भाग पर कापर आक्सीक्लोराइड का गाढा लेप कर देते हैं तथा इसी दवा की 3 ग्राम मात्रा/ली पानी में मिलाकर उसका छिडकाव अक्टूबर व नवम्बर में 15 दिन के अन्तराल पर कर देते हैं जिससे इस रोग से बचाव होता है।

आम का गुम्मा या गुच्छशीर्ष रोग (Mango malformation)

Causal organism: *Aceria mangiferae* and *Fusarium moniliforme*

यह आम के बागों में लगने वाली प्रमुख बीमारी है। यह बीमारी आम के लगभग प्रत्येक पौधे पर दिखलाई पडती है। इस रोग के कारकों का ठीक से अभी तक पता नहीं चल पाया है परन्तु ये माना जाता है कि यह रोग एक फफूंद तथा एक माइट के संयुक्त प्रभाव से होता है।

इस रोग की दो अवस्थायें होती है। पहली वानस्पतिक अवस्था तथा दूसरी पुष्पीय अवस्था। वानस्पतिक अवस्था में टहनियों के अग्रभाग पर पत्तियां छोटी–छोटी तथा गुच्छों के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं तथा उनकी आगे की वृद्धि रूक जाती है जबकि पुष्पीय अवस्था में पुष्प सामान्य मंजरियों की अपेक्षा बडे होते हैं तथा उनमें फल नहीं बनते है। पुष्पीय अवस्था ग्रसित मंजरियों में अधिकतर नर फूल होते हैं जिसकी वजह से उसमें फल नहीं लगते है।

प्रबन्धनः

1. इस रोग से बचाव के लिए रोग ग्रसित पुष्प मंजरियों तथा टहनियों को थोडे से हरे भाग सहित काट लें तथा उनको जमीन में दबा दें या जला दें।
2. फिर इन पौधों पर अक्टूबर माह में 200 पीपीएम नेफथलीन एसेटिक ऐसिड (एन ए ए) के घोल का छिडकाव कर दें तो इस रोग को कम किया जा सकता है।

पशुओं हेतु आधुनिक पोषण आहार

डॉ0 सुशील कुमार[1], डॉ0 गौरव वर्मा[1], डॉ0 अरूण कुमार[2] एवं प्रो0 रामजी गुप्ता[3]
[1]विषय–वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, कासगंज
[2]सह प्राध्यापक, [3]विभागाध्यक्ष, पशुपालन एवं दुग्ध वि०वि० चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

हम सभी इस बात को अच्छी तरह जानते है कि पशुओं को पालने में लगभग 70 प्रतिशत खर्च उनके आहार पर होता है। वर्तमान समय मे पशुओं को ऐसा आहार खिलाना चाहिए जो सस्ता, संतुलित एवं अधिक दुग्धोत्पादक हो। असंतुलित आहार के कारण हमारे पशु में कमजोरी, दुग्ध उत्पादन क्षमता में कमी, विभिन्न बीमारियों के साथ–साथ ब्याने के अंतराल में भी अधिक अंतर आ जाता है। जिससे पशुपालक को आर्थिक नुकसान पहुंचता है। यदि हम सस्ते एवं संतुलित आहार की व्यवस्था कर लें तो वर्तमान की अपेक्षा हम पूरे देश के दुग्ध उत्पादन को 35 से 45 प्रतिशत तक बढ़ाने में सफलता पा सकते हैं।

साधारणतया पशुओं के आहार में चारा एवं दाना दोनों होता है, जिसमें मुख्य खर्च दाने के ऊपर आता है, क्योंकि बाजार में इसकी कीमत लगभग 10 रूपये से 15 रूपये प्रति किलोग्राम है । सस्ता चारा बनाने हेतु हम इस दाने को ही कम करके सफलता पा सकते हैं और इसकी कमी को पूरा करने हेतु हरे चारे की व्यवस्था आवश्यक है। हमारी परिस्थितियों में हरे चारे का महत्व और बढ़ जाता है, क्योंकि आर्थिक दृष्टि से पशुपालक द्वारा पशु आहार में दाने की व्यवस्था करना कठिन है।

हरा चारा स्वादिष्ट, अधिक सुपाच्य एवं पौष्टिक होने के नाते, पशु पोषण एवं पशु आहार में विशिष्ट स्थान रखता है। हरे चारे में ऊर्जा, प्रोटीन, कैल्शियम एवं विटामिन 'ए' की पर्याप्त मात्रा मिलती है। इसके अतिरिक्त इसमें खनिज तत्वों की प्रचुर मात्रा होती है जो पशु के दुग्ध उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में सहायक होती है।

हमें यह प्रयास करना चाहिए कि हम पशुओं को पूरे वर्षभर हरा–चारा खिलावें । ऐसा देखा गया है कि लगभग 4 से 6 लीटर दूध देने वाले पशु को हम केवल हरे चारे एंव भूसा खिलाकर पाल सकते है। पशुओं के आहार में प्रयुक्त हरा चारा मुख्यतः दो प्रकार का होता है।

1. **दलहनी चारेः** पशुओं के आहार में दलहनी चारे का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। यह खनिज एवं प्रोटीन से परिपूर्ण होता है। हम दाल घटक वाले हरे चारे खिलाकर प्रति यूनिट कम लागत से अधिक दुग्ध उत्पादन पा सकते है। हमारे देश में दलहनीय चारे के रूप में उगायी जाने वाले चारों में बरसीम, रिजका, लोबिया, ग्वार व सेम प्रमुख हैं।
2. **अदलहनी चारेः** यह चारा उर्जा एवं खनिज तत्व की अधिकता से परिपूर्ण होता है, जबकि प्रोटीन की मात्रा दलहनी चारे से थोड़ी कम होती है। सूडान हाइब्रिड, ज्वार, बाजरा, जई एवं मक्का हमारे देश के प्रमुख अदलहनी चारे हैं।

पूरे वर्ष पशुओं हेतु सस्ता पोषाहार तैयार करने हेतु हमें पूरे वर्ष हरे चारे की उपलब्धता बनायी रखनी पड़ेगी। इसके लिए उचित सिंचाई व्यवस्था के साथ हमें खरीफ, रबी एवं जायद में अलग – अलग चारों की बुआई करनी चाहिए।

खरीफ मौसम मे सूडान हाइब्रिड के साथ लोबिया या मक्का के साथ लोबिया या एम.पी. चरी के साथ लोबिया की बुआई करनी चाहिए। इनकी बुआई का सही समय जुलाई या अगस्त माह है एवं इनसे अगस्त से अक्टूबर माह तक चारा प्राप्त किया जा सकता है। रबी मौसम आने पर बरसीम, जई अथवा लूसर्न की बोआई अक्टूबर माह के आस–पास करें, जिससे नवंबर से मई तक हरे चारे की उपलब्धता बनी रहें। जायद मौसम में लोबिया के साथ मक्का अथवा एम.पी. चरी की बुआई करें। बुआई का समय मार्च होगा । जिससे अप्रैल से जुलाई तक हरें चारे की प्राप्ति की जा सकें।

हरे चारों की कटाई का उचित समय फसल या चारे की पुष्पावस्था से कुछ दिन पूर्व होती है। इसके उपरान्त या पूर्व कटाई करने पर पौष्टिक तत्वों का संतुलन उचित नहीं रहता। पुष्पावस्था एक ही

समय में ना आये इसके लिए बोआई करते समय थोड़ा अंतराल रखे। साइलेज बनाकर हरे चारे को संरक्षित भी कर सकते है।

पशु को खिलाने हेतु हमेशा चारे की कुट्टी बनाकर खिलाना चाहिए जिससे चारे की पचनीयता बढ़ जाती है। कुट्टी बनाने से चारा बर्वाद भी कम होता है तथा पशुओं को इसे खाने व पचाने में भी आसानी होती है। पशु को खिलाने वाले चारे की मात्रा पशु के भार एवं दुग्ध उत्पादन के आधार पर निर्धारित करना चाहिए।

पशु के भार के आधार पर प्रति 100 किग्रा. भार पर 2.5 से 3.0 किग्रा. शुष्क पदार्थ देना चाहिए। दुग्ध उत्पादन में प्रति 2.5–3.0 लीटर दुग्ध उत्पादन पर 1 किग्रा. दाना मिश्रण गाय को तथा 1.50 किग्रा. दाना भैंस को देना चाहिए। लगभग 4 से 6 लीटर दुग्ध उत्पादन तक यदि पर्याप्त हरा चारा हो तो अलग से उक्त मिश्रण देने की आवश्यकता नहीं होती है।

पशुओं को संतुलित आहार खिलाएः

एक दुधारू पशु को सामान्यतः 5–7 किग्रा. चारा तथा 1.0 किग्रा. दाना जीवन निर्वाह हेतु दिया जाता है। उत्पादन का राशन निम्न प्रकार से दिया जाता है।

उत्पादन का राशनः जीवन निर्वाह राशन के अतिरिक्त, 2.5–3.0 लीटर दूध पर 1 किग्रा. दाना मिश्रण गाय को तथा 1.50 किग्रा. दाना भैंस को देना चाहिए। यदि पशु दुग्ध उत्पादन के अतिरिक्त ग्याभिन भी है तो ब्याने से लगभग 2 माह पूर्व 1.0 किलोग्राम दाना प्रतिदिन दिया जाना चाहिए। प्रति 10 किलोग्राम हरे चारे पर 1.0 किलोग्राम दाना घटाया या बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त 40–50 ग्राम खनिज मिश्रण तथा 20–25 ग्राम नमक प्रतिदिन खिलाना चाहिए।

राशन सूत्र

सरसों/मूंगफली/अलसी की खली–25 प्रतिशत, गेहूं का चोकर–32 प्रतिशत, जौ/मक्का/दलिया–25 प्रतिशत, चावल पालिश–15 प्रतिशत, मिनरल (खनिज) मिश्रण–02 प्रतिशत, नमक–01 प्रतिशत **योग**–100 प्रतिशत

शरीर निर्वाह हेतु एक किग्रा. दाना मिश्रण प्रतिदिन प्रत्येक पशु को अवश्य देना चाहिए। परन्तु बरसीम जैसे दो दल वाले हरे चारे को खिलाकर शरीर निर्वाह हेतु एक किलो दाने की बचत कर सकते हैं। यदि एक गाय 5 लीटर दूध देती हो तो दुग्ध उत्पादन हेतु 2 किग्रा. दाना एवं शरीर निर्वाह हेतु एक किग्रा. दाने की बचत हरे चारे द्वारा कर सकते हैं, अर्थात 3 किग्रा. दाना प्रति दिन हरे चारे के उपयोग के द्वारा बचाया जा सकता हैं। इस तीन किग्रा. दाने की कीमत लगभग 30–35 रूपये तक होगी जबकि इसको संतुलित करने हेतु 30 किग्रा. हरे चारे की कीमत मात्र 15–20 रूपये होगी । इस प्रकार हरा चारा एवं भूसा खिलाकर प्रति दिन 15 रूपये की बचत कर सकते हैं । दाने के साथ खनिज लवण एवं विटामिन अलग से भी देने पड़ सकते हैं। जबकि हरे चारे से इनकी भी बचत की जा सकती है ।

इसके अतिरिक्त मादा पशुओं में कैल्शियम की कमी की पूर्ति हेतु प्रत्येक पशु को 50 ग्राम खड़िया मिट्टी खिलाना चाहिए जिसकी कीमत मात्र 50 पैसे होगी। पशु को खाने वाले नमक की 25 ग्राम मात्रा भी दें जिसकी कीमत मात्र 25 पैसे होगी, जिससे पाचन क्रिया ठीक रहे तथा दुग्ध उत्पादन उच्च स्तर पर बना रहे। यदि पशु लगातार दुग्ध उत्पादन कर रहा हो तो प्रति पशु 50 ग्राम खनिज लवण खिलाना चाहिए जिससे इसकी कमी न हों क्योंकि इसकी कमी से बांझपन व प्रजनन की समस्यायें आ सकती हैं और पशु के ब्याने व गर्मी पर आने के समय में अंतर आ सकता है जिससे पशुपालक को आर्थिक हानि उठानी पड़ सकती है।

पशुओं को आहार नियमित अंतराल पर देना चाहिए तथा राशन में एकाएक परिवर्तन कदापि नहीं करना चाहिए। दाना, हराचारा एवं भूसा को हल्का सा भिगोकर रखें, तत्पश्चात ही पशु को दें । पीने का पानी स्वच्छ, ताजा एवं कीटाणु रहित होना चाहिए ।

श्री अन्न: पोषण, स्वास्थ्य एवं टिकाऊ कृषि की ओर एक महत्वपूर्ण कदम

डॉ0 अदिति दत्त, डॉ0 अंकित सिंह भदौरिया, डॉ0 आकाश
विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, कासगंज

एक विस्मृत विरासत का पुनरुद्धार:

वर्तमान समय में वैश्विक कृषि प्रणाली अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है, जिनमें जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों की कमी, मृदा क्षरण तथा पोषण असुरक्षा प्रमुख हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए ऐसी कृषि प्रणालियों और फसलों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है जो पर्यावरण के अनुकूल होने के साथ–साथ पोषण सुरक्षा भी सुनिश्चित करें। मिलेट्स, जिन्हें भारत में "श्री अन्न" के नाम से भी जाना जाता है, इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। श्री अन्न में बाजरा, ज्वार, रागी, कोदो, कुटकी, कंगनी और सांवा जैसे मोटे अनाज शामिल हैं, जो पोषण से भरपूर, जलवायु के प्रति सहनशील तथा कम संसाधनों में उगने वाली फसलें हैं।

भारत प्राचीन काल से ही विविध कृषि प्रणालियों और पारंपरिक खाद्य पदार्थों के लिए जाना जाता रहा है। वेदों और उपनिषदों में भी 'प्रियंगु' (कंगनी) और 'श्यामक' (सावां) जैसे अनाजों का उल्लेख मिलता है। मिलेट्स या मोटे अनाज भारतीय आहार और कृषि प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं। समय के साथ हरित क्रांति के बाद धान और गेहूं जैसी फसलों के उत्पादन और उपभोग में वृद्धि हुई, जिसके कारण मिलेट्स की खेती और उपयोग में कमी आई। हालांकि, वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, पोषण की कमी और पर्यावरणीय चुनौतियों को देखते हुए मिलेट्स का महत्व पुनः बढ़ गया है। इसी कारण भारत सरकार ने मिलेट्स को "श्री अन्न" नाम देकर इनके उत्पादन और उपभोग को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न पहलें की हैं।

श्री अन्न न केवल पोषण की दृष्टि से समृद्ध हैं बल्कि ये कम पानी, कम उर्वरक और कठिन जलवायु परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाए जा सकते हैं। इसलिए इन्हें टिकाऊ कृषि प्रणाली के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। यह केवल एक फसल नहीं है, बल्कि यह जीरो हंगर (Zero Hunger) और सतत् विकास लक्ष्यों (SDGs) को प्राप्त करने का एक सशक्त माध्यम है।

श्री अन्न (Millets) का वर्गीकरण और पहचान:

श्री अन्न को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में बांटा गया है:

प्रमुख मिलेट्स (Major Millets)

ज्वार (Sorghum):ऊर्जा का बड़ा स्रोत, पाचन में सुपाच्य।
बाजरा (Pearl Millet): आयरन और फाइबर से भरपूर, रेतीली मिट्टी के लिए उत्तम।
रागी (Finger Millet): कैल्शियम का भंडार, बच्चों के विकास के लिए अनिवार्य।

लघु मिलेट्स (Minor Millets):

कंगनी (Foxtail Millet): नसों की मजबूती और डिटॉक्स के लिए प्रसिद्ध।
कोदो (Kodo Millet): मधुमेह रोगियों के लिए सर्वोत्तम।
कुटकी (Little Millet):प्रजनन स्वास्थ्य और हार्मोनल संतुलन में सहायक।
सावां (Barnyard Millet): वजन घटाने और कम कैलोरी वाले आहार के लिए उपयुक्त।

वैज्ञानिक रूप से श्री अन्न को 'न्यूट्री–सीरियल्स' कहा जाता है। इनके सेवन से निम्नलिखित लाभ मिलते हैं:

मधुमेह नियंत्रण: इनका ग्लाइसेमिक इंडेक्स (GI) कम होता है, जिससे रक्त में शर्करा का स्तर अचानक नहीं बढ़ता।

हृदय स्वास्थ्य: इनमें मौजूद मैग्नीशियम रक्तचाप को नियंत्रित करता है और धमनियों को स्वस्थ रखता है।

हड्डियों की मजबूती: रागी में कैल्शियम की मात्रा दूध से भी अधिक होती है, जो ऑस्टियोपोरोसिस से बचाता है।

ग्लूटेन–मुक्त: यह उन लोगों के लिए वरदान है जिन्हें गेहूँ से एलर्जी (Celiac Disease) है।

एनीमिया से बचाव: बाजरा और कंगनी में उच्च मात्रा में आयरन होता है, जो शरीर में खून की कमी को दूर करता है।

श्री अन्न और 'जीरो हंगर' का गहरा संबंध: 'जीरो हंगर' का अर्थ केवल पेट भरना नहीं, बल्कि शरीर को आवश्यक पोषण प्रदान करना है। श्री अन्न इस लक्ष्य को तीन स्तरों पर प्राप्त करने में मदद करते हैं:

1. **उपलब्धता:** श्री अन्न को 'सूखा सहिष्णु' (Drought&tolerant) फसलें कहा जाता है। जहाँ अन्य अनाज पानी की कमी से बर्बाद हो जाते हैं, वहीं बाजरा, ज्वार और रागी जैसी फसलें कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी भरपूर उत्पादन देती हैं। यह उन क्षेत्रों में खाद्य उपलब्धता सुनिश्चित करता है जहाँ भुखमरी का खतरा सबसे अधिक है।

2. **वहनीयता:** इन फसलों की खेती की लागत बहुत कम है। इन्हें महंगे कीटनाशकों या हाइब्रिड बीजों की आवश्यकता नहीं होती।

3. **पोषण:** भुखमरी का एक गुप्त रूप 'Hidden Hunger' (सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी) है। श्री अन्न में आयरन, जिंक, कैल्शियम और विटामिन प्रचुर मात्रा में होते हैं, जो कुपोषण की समस्या को जड़ से खत्म करते हैं।

4. टिकाऊ कृषि (Sustainable Agriculture) में श्री अन्न का योगदान:

टिकाऊ कृषि वह पद्धति है जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना भविष्य की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करे। श्री अन्न इस मापदंड पर सबसे सटीक बैठते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ता तापमान गेहूँ और धान की फसलों को नष्ट कर देता है, लेकिन श्री अन्न विपरीत परिस्थितियों और सूखे में भी जीवित रहने की क्षमता रखते हैं। इन्हें 'क्लाइमेट स्मार्ट क्रॉप्स' कहा जाता है। इन फसलों को उगाने के लिए यूरिया या डीएपी जैसे महंगे और हानिकारक रासायनिक उर्वरकों की न के बराबर आवश्यकता होती है। इनकी जड़ें गहरी होती हैं, जो मिट्टी की संरचना को सुधारती हैं और कटाव को रोकती हैं।

4.1 सतत् कृषि संकेतकों के आधार पर मिलेट्स (श्री अन्न), चावल एवं गेहूं का तुलनात्मक विश्लेषण

मानदंड	मिलेट्स (श्री अन्न)	चावल	गेहूं
पानी की आवश्यकता	बहुत कम (300–400 मिमी)	बहुत अधिक (1200–1500 मिमी)	मध्यम (450–650 मिमी)
जलवायु सहनशीलता	सूखा व उच्च तापमान सहनशील	अधिक पानी व नियंत्रित जलवायु आवश्यक	मध्यम जलवायु में बेहतर
मिट्टी की उर्वरता की आवश्यकता	कम उर्वर मिट्टी में भी उत्पादन	उपजाऊ मिट्टी आवश्यक	मध्यम से अच्छी मिट्टी आवश्यक
रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता	कम	अधिक	मध्यम
कीट एवं रोग प्रतिरोध	अपेक्षाकृत अधिक	रोग व कीट का अधिक प्रकोप	मध्यम
उत्पादन लागत	कम	अधिक	मध्यम
जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलता	अत्यधिक अनुकूल	कम	मध्यम
मृदा संरक्षण	मृदा कटाव कम, मिट्टी की संरचना सुधारता है।	जलभराव से मिट्टी प्रभावित	सामान्य
पोषण मूल्य	उच्च (फाइबर, आयरन, कैल्शियम)	अपेक्षाकृत कम	मध्यम
सतत कृषि में योगदान	अत्यधिक महत्वपूर्ण	सीमित	मध्यम

5. भारत में प्रमुख मिलेट्स (श्री अन्न) की खेती हेतु उपयुक्त जलवायु, मिट्टी, बुवाई समय एवं प्रमुख उत्पादन क्षेत्रों का विवरण

मिलेट का नाम	उपयुक्त जलवायु	मिट्टी का प्रकार	बुवाई का समय	पानी की आवश्यकता	प्रमुख उत्पादक राज्य
बाजरा	गर्म व शुष्क	हल्की से मध्यम दोमट	जून–जुलाई	कम	राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, गुजरात
ज्वार	गर्म व अर्ध–शुष्क	मध्यम से भारी दोमट	जून–जुलाई (खरीफ), अक्टूबर (रबी)	कम से मध्यम	महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रदेश
रागी	मध्यम तापमान व पर्याप्त वर्षा	लाल व दोमट मिट्टी	जून–जुलाई	मध्यम	कर्नाटक, तमिलनाडु, उत्तराखंड
कोदो	गर्म व शुष्क	हल्की दोमट व कम उपजाऊ भूमि	जून–जुलाई	बहुत कम	मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ
कुटकी	मध्यम व शुष्क	हल्की दोमट	जून–जुलाई	कम	मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ
कंगनी	गर्म व कम वर्षा	रेतीली व दोमट	जून–जुलाई	कम	आंध्र प्रदेश
सांवा	ठंडी व मध्यम जलवायु	हल्की दोमट	जून–जुलाई	कम	उत्तराखंड, हिमांचल प्रदेश

6. श्री अन्न की खेती की वैज्ञानिक तकनीक:

एक सफल किसान के रूप में श्री अन्न की खेती के लिए निम्नलिखित चरणों का पालन आवश्यक है:

बुवाई का समय: अधिकांश श्री अन्न खरीफ (मानसून) की फसलें हैं, जिन्हें जून–जुलाई में बोया जाता है। हालाँकि, सिंचित क्षेत्रों में इन्हें रबी और जायद में भी उगाया जा सकता है।

बीज उपचार: बीजों को बीजामृत या ट्राइकोडर्मा से उपचारित करने पर रोगों की संभावना न्यूनतम हो जाती है।

दूरी और गहराई: छोटे दानों के कारण इन्हें उथला बोया जाता है। कतार से कतार की दूरी 25 से 30 सेमी रखनी चाहिए।

मिश्रित खेती (Intercropping): श्री अन्न के साथ अरहर, मूंग या उड़द जैसी दलहनी फसलें उगाने से भूमि की उर्वरता बढ़ती है और किसान को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।

7. आर्थिक और वैश्विक परिप्रेक्ष्य:

भारत विश्व का सबसे बड़ा श्री अन्न उत्पादक है–

अंतर्राष्ट्रीय मिलेट्स वर्ष 2023: भारत के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र ने इसे वैश्विक स्तर पर मनाया, जिससे भारतीय किसानों को अंतर्राष्ट्रीय बाजार मिला।

महिला सशक्तिकरण: मिलेट्स के प्रसंस्करण (Processing) और मूल्य संवर्धन (Value Addition) में महिला स्वयं सहायता समूह (SHGs) बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। मिलेट्स के बिस्कुट, नूडल्स और पास्ता बनाकर ग्रामीण महिलाएं आत्मनिर्भर बन रही हैं।

'कल' का भोजन, 'आज' की जरूरत:

'श्री अन्न' केवल भोजन की थाली का हिस्सा नहीं है, बल्कि यह एक स्वस्थ जीवनशैली और सुरक्षित पर्यावरण की प्रतिज्ञा है। यह कम लागत में किसान की आय दोगुनी करने और उपभोक्ताओं को रोगों से बचाने का सबसे सरल मार्ग है।

यदि हम अपनी जड़ों की ओर लौटें और अपनी कृषि नीति में श्री अन्न को प्राथमिकता दें, तो हम न केवल 'कुपोषण मुक्त भारत' बल्कि 'कुपोषण मुक्त विश्व' की नींव रख सकते हैं।

बाजरा आधारित स्वास्थ्य वर्धक उत्पादः एक टिकाऊ और लाभदायक उद्यम

दिव्या कौशिक[1], डॉ0 के0के0 सिंह[2] एवं रश्मि दूबे[3]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ, गृह विज्ञान [2]अध्यक्ष/वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र, रायबरेली–द्वितीय

[3]शोधार्थी वस्त्र एवं परिधान विज्ञान विभाग, च0 शे0 आ10 कृषि एवं प्रौ0 वि0 वि0, कानपुर

बाजरा, जिसे अब 'श्री अन्न' के नाम से जाना जाता है, भारतीय कृषि और खान–पान का एक अभिन्न अंग रहा है। अपने प्रचुर पोषण मूल्य (उच्च फाइबर, प्रोटीन, खनिज और लसलसापन (ग्लूटेन) मुक्त प्रकृति) के कारण यह आधुनिक उपभोक्ता के बीच तेजी से लोकप्रियता हासिल कर रहा है। स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता और सरकार के प्रोत्साहन ने बाजरा आधारित हेल्दी स्नैक्स बनाने की एक इकाई स्थापित करने का एक शानदार अवसर प्रदान किया है।

यहाँ 100 ग्राम कच्चे बाजरे का अनुमानित पोषण विवरण दिया गया हैः

क्र0सं0	पोषक तत्व	मात्रा (प्रति 100 ग्राम)
1	ऊर्जा	360–380 किलो कैलोरी
2	प्रोटीन	11–12 ग्राम
3	वसा	4.5–5.0 ग्राम
4	कार्बोहाइड्रेट	67–70 ग्राम
5	फाइबर	1.2–2.0 ग्राम
6	आयरन	8.0 मि0ग्रा0
7	मैग्नीशियम	137 मि0ग्रा0
8	फॉस्फोरस	311 मि0ग्रा0
9	पोटेशियम	307 मि0ग्रा0
10	जिंक	3.1 मि0ग्रा0

1. व्यवसाय का अवसर और बाजार की मांगः

आज के दौर में लोग पारंपरिक, चायनीज और प्रसंस्कृत स्नैक्स के बजाय पौष्टिक और प्राकृतिक विकल्पों की तलाश कर रहे है। बाजरा इस मांग को पूरा करता है। यूनिट स्थापित करने के लिए निम्नलिखित बाजार कारकों पर विचार किया जाना चाहिए।

स्वास्थ्य लाभः बाजरा मधुमेह प्रबंधन, हृदय स्वास्थ्य और वजन नियंत्रण में सहायक है, जो इसे स्वास्थ्य–सजग उपभोक्ताओं के लिए एक सुपरफूड बनाता है।

सरकारी समर्थनः भारत सरकार बाजरा के उत्पादन और मूल्यवर्धन को बढ़ावा दे रही है, जिससे इस क्षेत्र में नई इकाइयों के लिए वित्तीय सहायता और योजनाओं (जैसे PMFME) का लाभ उठाना आसान हो गया है।

उत्पादों की विविधताः बाजरे से कुकीज, नमकीन, पफ्स, रेडी–टू–ईट मिक्स, एनर्जी बार और मट्ठी जैसे कई तरह के हेल्दी स्नैक्स बनाए जा सकते है।

यूनिट स्थापित करने की प्रक्रियः

बाजरे के स्नैक्स की यूनिट स्थापित करने के लिए चरण–दर–चरण दृष्टिकोण आवश्यक हैः

क) योजना और अनुसंधानः

सबसे पहले, अपने लक्षित बाजार (स्थानीय, शहरी, ऑनलाइन) और उत्पाद रेंज (उदाहरण के लिए, केवल रागी कुकीज, या एक पूर्ण स्नैक्स लाइन) का निर्धारण करें। एक विस्तृत व्यापार योजना तैयार करें जिसमें अनुमानित लागत, राजस्व और लाभ शामिल हों।

ख) आवश्यक लाइसेंस और पंजीकरणः

खाद्य व्यवसाय शुरू करने के लिए कुछ अनिवार्य अनुमतियाँ आवश्यक हैः

1. **FSSAI (भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण) लाइसेंसः** यह यूनिट की कानूनी मान्यता और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण है।

2. **GST पंजीकरणः** यदि वार्षिक कारोबार एक निश्चित सीमा (वर्तमान में रू 20 लाख) से अधिक होता है, तो यह आवश्यक है।
3. **उद्योग आधार (MSME) पंजीकरणः** यह सरकारी योजनाओं और सब्सिडी का लाभ उठाने में मदद करता है।
4. **स्थानीय प्राधिकरण से अनुमतिः** नगर पालिका या ग्राम पंचायत से व्यावसायिक अनुमति लेनी होगी।

ग) स्थान का चयनः

यूनिट ऐसी जगह पर स्थापित की जानी चाहिए जहाँ कच्चे माल (बाजरा) की उपलब्धता आसान हो, बिजली और पानी की आपूर्ति स्थिर हो और परिवहन की सुविधा हो। स्वच्छता और खाद्य सुरक्षा मानकों के अनुसार पर्याप्त कार्यक्षेत्र और भंडारण सुविधा (कच्चे माल और तैयार माल के लिए) होना आवश्यक है।

घ) मशीनरी और चयनः

स्नैक्स के प्रकार के आधार पर मशीनरी का चयन किया जाता है। एक बुनियादी यूनिट के लिए निम्न मशीनें आवष्यक हो सकती हैं

- ❖ बाजरा डी– और क्लीनर/ग्रेडरः कच्चे बाजरे को साफ करने और भूसी हटाने के लिए।
- ❖ ग्राइंडर/मिलः बाजरे का आटा बनाने के लिए।
- ❖ मिक्सर और आटा गूंथने की मशीनः स्नैक्स मिश्रण/आटा तैयार करने के लिए।
- ❖ ओवन/बेकिंग मशीन या फ्रायर (तेल रहित या कम तेल वाले स्नैक्स के लिए) उत्पाद पकाने के लिए।
- ❖ पैकेजिंग और सीलिंग मशीनः तैयार स्नैक्स को पैक करने के लिए।

2. **गुणवत्ता नियंत्रण और उत्पाद विकासः** फसलता के लिए गुणवत्ता और निरंतर उत्पाद नवाचार महत्वपूर्ण हैं।

क) कच्चे माल की सोर्सिंग किसानों के समूह (FPO) या विश्वसनीय आपूर्तिओं से बाजरा खरीदें। गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए बाजरे को अच्छी तरह से सुखाया और साफ किया जाना चाहिए। प्रमाणित जैविक बाजरे का उपयोग करने से प्रीमियम बाजार तक पहुँचने में मदद मिल सकती है।

ख) शेल्फ लाइफ और पैकेजिंगः

बाजरा–आधारित स्नैक्स की नमी पर नियंत्रण रखना जरूरी है। उत्पादों की शैल्फ लाइफ बढ़ाने के लिए नमी प्रतिरोधी पैकेजिंग का उपयोग करें। स्टैंड–अप पाउच या रीसीलेबल क्राफ्ट पेपर पैकेजिंग ग्राहकों को आकर्षित करने में सहायक हो सकते हैं। पैकेजिंग ग्राहकों को आकर्षित करने में सहायक हो सकते हैं। पैकेजिंग पर FSSAI नंबर, सामग्री, पोषण मूल्य और निर्माण/समाप्ति तिथि का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

ग) उत्पाद नवाचारः

केवल पारंपरिक स्नैक्स पर निर्भर न रहें। नए स्वाद और संयोजन (जैसे–बाजरा और मेथी, बाजरा और चॉकलेट) विकसित करें। पोषण विशेषज्ञ की मदद से ऐसे व्यंजन तैयार करें जो स्वादिष्ट हो और जिनमें तेल, नमक या चीनी की मात्रा कम हो। यह यूनिट की ब्रांड पहचान बनाने में मदद करेगा।

3. **व्यवसाय को बढ़ावा देना और विपणनः** उत्पादन यूनिट स्थापित करने के बाद, उत्पादों को सफलतापूर्वक बाजार तक पहुँचाना आवश्यक है–

ब्राडिंगः एक आकर्षक और विश्वसनीय ब्रांड नाम और लोगों विकसित करें जो स्वास्थ्य और पोषण को दर्शाता हो। बाजरे के स्वास्थ्य लाभों को उजागार करें।

वितरण चैनलः

स्थानीय बाजारः किराना स्टोर, सुपरमार्केट और स्थानीय स्वास्थ्य खाद्य भंडारों के साथ टाई–अप करें।

ऑनलाइन बिक्रीः अपनी बेवसाइट या ई–कॉमर्स प्लेटफार्म (जैसे अमेजन, फिलपकार्ट) के माध्यम से बिक्री शुरू करें।

ओक बिक्रीः कॉपोरेट उपहार या जिम/योग स्टूडियो को सीधे आपूर्ति करना एक अच्छा विकल्प है।

जागरूकता अभियानः स्वास्थ्य मेलों, किसान बाजरों में स्टॉल लगाएं। सोशल मीडिया पर बाजरे के फायदों के बारे में जानकारी साझा करें।

शिक्षाः उपभोक्ताओं को यह समझाना महत्वपूर्ण है कि बाजरा उनके पारंपरिक स्नैक्स से बेहतर क्यों है।

4. वित्तीय पहलू और सरकारी सहायताः बाजरे के स्नैक्स यूनिट की स्थापना में निवेश (रू 2 लाख से लेकर रू 20 लाख या उससे अधिक, यूनिट के पैमाने पर निर्भर करता है) की आवश्यकता होती है।

कार्यशील पूंजीः यूनिट के सुचारू संचालन के लिए कच्चे माल की खरीद, बिजली, श्रम और मार्केटिंग के लिए पूंजी की आवश्यकता होती है।

सरकारी योजनाऐंः

PMFME (प्रधानमंत्री फॉर्मलाइजेशन ऑफ माइक्रो फूड प्रोसेसिंग एंटरप्राइजेज): यह योजना छोटे खाद्य प्रसंस्करण यूनिटों को वित्तीय सहायता (ऋण–आधारित सब्सिडी) प्रदान करती है।

कृषि और ग्रामीण विकास योजनाएंः नाबार्ड और अन्य सरकारी निकाय भी इस तरह के ग्रामीण उद्यमों के लिए ऋण और प्रशिक्षण प्रदान करते हैं।

बाजरे से हैल्दी स्नैक्स बनाने की यूनिट स्थापित करना न केवल एक लाभदायक व्यावसायिक उद्यम है, बल्कि यह किसानों की आय बढ़ाने, पारंपरिक 'श्री अन्न' को पुनर्जीवित करने और देश को स्वस्थ खाद्य विकल्प प्रदान करने की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम है। सही योजना, गुणवत्ता नियंत्रण और प्रभावी विपणन के साथ, यह यूनिट फसल होकर समाज और उद्यमी दोनों के लिए स्वास्थ्य और धन का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

सहजन (मोरिंगा): सेहत का प्राकृतिक खजाना

डॉ0 शैलजा डी[1], मोनिका वर्मा[2], डॉ0 आकांक्षा सिंह[1], डॉ0 हरविन्द्र पाल[1], डॉ0 विकास कुमार यादव[1] एवं डॉ0 अतहर हुसैन वारसी[2]

[1]विषय–वस्तु विशेषज्ञ, [2]प्रभारी, कृषि विज्ञान केन्द्र, हाथरस।

[3]शोध छात्रा, प्रसार शिक्षा और संचार प्रबंधन, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, च0शे0आ0 कृषि एवं प्रौ0 वि0वि0, कानपुर (उ0 प्र0)

प्रकृति ने मनुष्य को स्वस्थ जीवन जीने के लिए अनेक प्रकार की औषधीय वनस्पतियाँ प्रदान की हैं। इन वनस्पतियों में कुछ ऐसी भी हैं जिनका महत्व केवल भोजन तक सीमित नहीं है, बल्कि वे हमारे स्वास्थ्य की रक्षा करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सहजन, जिसे आमतौर पर मोरिंगा या ड्रमस्टिक के नाम से भी जाना जाता है, ऐसी ही एक बहुमूल्य वनस्पति है। इसका वैज्ञानिक नाम *मोरिंगा ओलीफेरा* है।

सहजन को "सेहत का प्राकृतिक खजाना" कहा जाता है क्योंकि इसमें पोषक तत्वों की भरपूर मात्रा पाई जाती है। इसकी पत्तियों में विटामिन A, विटामिन C, विटामिन B–कॉम्प्लेक्स, कैल्शियम, आयरन, पोटैशियम, मैग्नीशियम और प्रोटीन जैसे आवश्यक पोषक तत्व मौजूद होते हैं, जो शरीर के समुचित विकास और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक प्रकार के एंटीऑक्सीडेंट और औषधीय गुण भी पाए जाते हैं, जो शरीर को विभिन्न बीमारियों से बचाने में मदद करते हैं। सहजन की सबसे विशेष बात यह है कि इसके लगभग सभी भाग जैसे पत्तियाँ, फलियाँ (ड्रमस्टिक), बीज, फूल और जड़—किसी न किसी रूप में उपयोगी होते हैं। पत्तियों का उपयोग सब्जी, सूप और पाउडर के रूप में किया जाता है, जबकि फलियों का प्रयोग विभिन्न व्यंजनों में स्वाद और पोषण बढ़ाने के लिए किया जाता है। इसके बीजों से तेल भी निकाला जाता है, जिसका उपयोग औषधीय तथा सौंदर्य प्रसाधनों में किया जाता है।

भारत में सहजन का उपयोग सदियों से भोजन और आयुर्वेदिक चिकित्सा में किया जाता रहा है। आधुनिक विज्ञान ने भी इसके स्वास्थ्यवर्धक गुणों की पुष्टि की है। आज के समय में जब लोग रासायनिक दवाओं के दुष्प्रभावों से बचने के लिए प्राकृतिक उपचार की ओर बढ़ रहे हैं, तब सहजन का महत्व और भी बढ़ गया है। यह न केवल शरीर को पोषण देता है बल्कि कई रोगों से बचाव में भी सहायक है। इसलिए सहजन को वास्तव में स्वास्थ्य के लिए प्रकृति द्वारा दिया गया एक अनमोल उपहार कहा जा सकता है।

सहजन का परिचयः

सहजन एक तेजी से बढ़ने वाला पौधा है जो मुख्यतः उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है। भारत, श्रीलंका, नेपाल, अफ्रीका और दक्षिण–पूर्व एशिया में इसकी व्यापक रूप से खेती की जाती है। यह पौधा लगभग 8 से 12 मीटर तक ऊँचा हो सकता है। सहजन की फलियाँ लंबी और पतली होती हैं जो देखने में ड्रमस्टिक जैसी लगती हैं, इसलिए अंग्रेजी में इसे "ड्रमस्टिक ट्री" कहा जाता है। इसकी पत्तियाँ छोटी–छोटी और हरी होती हैं, जो पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं। सहजन का पेड़ बहुत कम पानी और साधारण मिट्टी में भी आसानी से उग सकता है। यही कारण है कि इसे गरीब और विकासशील क्षेत्रों में पोषण का सस्ता और प्रभावी स्रोत माना जाता है।

सहजन में पाए जाने वाले पोषक तत्वः

सहजन को "सुपरफूड" भी कहा जाता है क्योंकि इसमें अनेक प्रकार के पोषक तत्व पाए जाते हैं। इसके नियमित सेवन से शरीर को आवश्यक पोषण मिलता है। सहजन में निम्नलिखित प्रमुख पोषक तत्व पाए जाते हैं:

सहजन की पत्तियों में विशेष रूप से पोषक तत्वों की मात्रा अधिक होती है। कई शोधों के अनुसार इसमें संतरे से अधिक विटामिन दूध से अधिक कैल्शियम और केले से अधिक पोटैशियम पाया जाता है। इस कारण यह कुपोषण को दूर करने में अत्यंत सहायक माना जाता है।

सहजन के औषधीय गुणः

सहजन केवल एक पौष्टिक आहार ही नहीं है, बल्कि इसमें अनेक औषधीय गुण भी मौजूद हैं। इसके नियमित सेवन से कई प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं में लाभ मिल सकता है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायकः

सहजन में विटामिन और एंटीऑक्सीडेंट भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं, ये तत्व शरीर में श्वेत रक्त कोशिकाओं के निर्माण को बढ़ावा देता है। जो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत बनाते हैं। इससे शरीर को संक्रमण और मौसमी बीमारियों से लड़ने में मदद मिलती है।

मधुमेह नियंत्रण में सहायकः

सहजन की पत्तियों में मौजूद फाइबर, एंटीऑक्सीडेंट और कुछ जैव सक्रिय तत्व शरीर में ग्लूकोज के अवशोषण की प्रक्रिया को धीमा करते हैं, जिससे रक्त में शर्करा का स्तर संतुलित बना रहता है। इसके नियमित सेवन से मधुमेह के रोगियों को लाभ मिल सकता है।

हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारीः

सहजन में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट और पौधों से प्राप्त पोषक तत्व कोलेस्ट्रॉल को कम करने में मदद करते हैं। इससे हृदय स्वस्थ रहता है और हृदय रोगों का खतरा कम हो सकता है।

पाचन तंत्र को सुधारने में मददगारः

सहजन में पर्याप्त मात्रा में फाइबर पाया जाता है, जो पाचन तंत्र को बेहतर बनाता है। यह कब्ज, गैस और अपच जैसी समस्याओं को कम करने में सहायक होता है।

सूजन और दर्द में राहतः

सहजन में एंटी–इंफ्लेमेटरी गुण पाए जाते हैं जो शरीर में सूजन और दर्द को कम करने में मदद करते हैं। इसलिए इसे जोड़ों के दर्द में भी उपयोगी माना जाता है।

त्वचा और बालों के लिए उपयोगीः

सहजन में विटामिन A और विटामिन E प्रचुर मात्रा में होते हैं, जो त्वचा को स्वस्थ और चमकदार बनाते हैं। इसके अलावा यह बालों को मजबूत बनाने और बाल झड़ने की समस्या को कम करने में भी मदद करता है।

सहजन के विभिन्न उपयोगः

सहजन का उपयोग विभिन्न तरीकों से किया जाता है। इसे भोजन, औषधि और पोषण पूरक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

1. सब्जी के रूप में उपयोगः

सहजन की फलियों की सब्जी भारत में बहुत लोकप्रिय है। विशेष रूप से दक्षिण भारत में सांभर और अन्य व्यंजनों में इसका उपयोग किया जाता है।

2. पत्तियों का उपयोगः

सहजन की ताजी पत्तियों को सब्जी, सूप, दाल या पराठों में मिलाकर खाया जाता है, जिससे भोजन का स्वाद और पोषण दोनों बढ़ जाते हैं। इसके अलावा इन्हें सुखाकर पाउडर बनाया जाता है जिसे दूध, जूस या भोजन में मिलाकर लिया जा सकता है।

3. सहजन की चाय :

सहजन की पत्तियों से हर्बल चाय भी बनाई जाती है। यह चाय शरीर को ऊर्जा देने और स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक होती है।

4. बीज और तेलः

सहजन के बीजों से तेल निकाला जाता है जिसे "बेन ऑयल" कहा जाता है। यह तेल त्वचा और बालों के लिए बहुत लाभकारी होता है। यह तेल हल्का, सुगंधित और लंबे समय तक खराब न होने वाला होता है, इसलिए इसका उपयोग विभिन्न औषधीय और सौंदर्य संबंधी उत्पादों में किया जाता है।

कुपोषण दूर करने में सहजन की भूमिकाः

दुनिया के कई देशों में कुपोषण एक गंभीर समस्या है। सहजन इस समस्या को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसकी पत्तियाँ प्रोटीन, विटामिन और खनिजों का समृद्ध स्रोत हैं। बच्चों, गर्भवती महिलाओं और बुजुर्गों के लिए सहजन का सेवन विशेष रूप से लाभकारी माना जाता है। कई सामाजिक संस्थाएँ और स्वास्थ्य संगठन सहजन को पोषण का सस्ता और प्रभावी स्रोत मानते हैं। यदि इसे नियमित रूप से भोजन में शामिल किया जाए तो यह शरीर को आवश्यक पोषण प्रदान कर सकता है और कुपोषण की समस्या को कम करने में मदद कर सकता है।

सहजन की खेतीः

सहजन की खेती करना बहुत आसान होता है। यह पौधा कम पानी और साधारण मिट्टी में भी अच्छी तरह उग जाता है। इसकी खेती से किसानों को आर्थिक लाभ भी हो सकता है। सहजन के पौधे को उगाने के लिए गर्म जलवायु सबसे उपयुक्त होती है। इसे बीज या पौधों के माध्यम से लगाया जा सकता है। लगभग 6द्8 महीनों के भीतर यह पौधा फलियाँ देने लगता है। आजकल सहजन की व्यावसायिक खेती भी बढ़ रही है क्योंकि इसकी मांग देश और विदेश दोनों जगह तेजी से बढ़ रही है।

पर्यावरणीय महत्वः

सहजन का पेड़ पर्यावरण के लिए भी लाभकारी है। यह मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने में मदद करता है और वातावरण को स्वच्छ रखने में योगदान देता है। इसके अलावा सहजन का पौधा तेजी से बढ़ता है और कम संसाधनों में भी जीवित रह सकता है। इसलिए इसे पर्यावरण के अनुकूल पौधा माना जाता है।

सावधानियाँः

हालाँकि सहजन के अनेक स्वास्थ्य लाभ हैं, लेकिन इसका सेवन संतुलित मात्रा में ही करना चाहिए। अधिक मात्रा में सेवन करने से कुछ लोगों को पेट से संबंधित समस्याएँ हो सकती हैं। गर्भवती महिलाओं को सहजन की जड़ या छाल का उपयोग बिना चिकित्सकीय सलाह के नहीं करना चाहिए। किसी भी औषधीय उपयोग से पहले विशेषज्ञ की सलाह लेना उचित होता है।

कृषि संचार माध्यमों द्वारा जायद फसलों की नई तकनीकों का प्रसार

डॉ0 ऐश्वर्या सिंह[1], डॉ0 विनीता सिंह[2] एवं डॉ0 जया वर्मा[1]

[1]टीचिंग एसोसिएट, [2]एसोसिएट प्रोफेसर

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

भारतीय कृषि व्यवस्था में समय के साथ कई प्रकार के परिवर्तन देखने को मिले हैं। बढ़ती जनसंख्या, बदलती जलवायु परिस्थितियाँ और खाद्यान्न की बढ़ती आवश्यकता ने कृषि को अधिक वैज्ञानिक और तकनीकी बनाने की आवश्यकता को बढ़ाया है। आज कृषि केवल पारंपरिक अनुभवों तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि इसमें नई–नई तकनीकों और शोध आधारित विधियों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इन आधुनिक तकनीकों को किसानों तक पहुँचाने में कृषि प्रसार तंत्र और संचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

जायद फसलें रबी और खरीफ के बीच की अवधि में उगाई जाती हैं। इस अवधि का सही उपयोग करके किसान अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। हालांकि कई बार किसानों को जायद फसलों की उन्नत खेती के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं मिल पाती, जिसके कारण वे इन फसलों का पूरा लाभ नहीं उठा पाते। ऐसे में कृषि संचार माध्यमों का उपयोग करके किसानों तक नई तकनीकों की जानकारी पहुँचाना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

जायद फसलों का महत्वः

जायद मौसम सामान्यतः मार्च से जून के बीच का समय होता है। इस अवधि में तापमान अपेक्षाकृत अधिक रहता है और सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने पर कई प्रकार की फसलें सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। जायद मौसम में तरबूज, खरबूज, खीरा, ककड़ी, लौकी, करेला, तुरई, मूंग और उड़द जैसी फसलें प्रमुख रूप से उगाई जाती हैं।

ये फसलें किसानों के लिए आय का एक अतिरिक्त स्रोत प्रदान करती हैं। साथ ही बाजार में इनकी अच्छी मांग भी रहती है। यदि किसान इन फसलों की खेती वैज्ञानिक विधियों के अनुसार करें, जैसे कि उन्नत किस्मों का चयन, उचित बीज दर, संतुलित उर्वरक उपयोग और कीट–रोग प्रबंधन, तो उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है।

कृषि संचार माध्यमों की भूमिकाः

कृषि संचार माध्यम किसानों तक जानकारी पहुँचाने का एक प्रभावी तरीका हैं। इन माध्यमों के द्वारा कृषि से संबंधित नवीनतम जानकारी, तकनीक और सरकारी योजनाओं के बारे में किसानों को अवगत कराया जाता है। संचार माध्यमों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इनके द्वारा कम समय में बड़ी संख्या में किसानों तक जानकारी पहुँचाई जा सकती है।

आज के समय में पारंपरिक संचार माध्यमों के साथ–साथ आधुनिक तकनीकी साधनों का भी उपयोग किया जा रहा है। रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, मोबाइल फोन, इंटरनेट और सोशल मीडिया जैसे माध्यम कृषि जानकारी के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

जायद फसलों की नई तकनीकों के प्रसार के प्रमुख माध्यमः

रेडियो और टेलीविजनः

रेडियो और टेलीविजन लंबे समय से ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना प्रसार के प्रभावी साधन रहे हैं। कृषि से संबंधित कार्यक्रमों के माध्यम से किसानों को जायद फसलों की उन्नत खेती, नई किस्मों और आधुनिक कृषि पद्धतियों के बारे में जानकारी दी जाती है। कई किसान इन कार्यक्रमों से प्रेरित होकर नई तकनीकों को अपनाते हैं।

समाचार पत्र और कृषि पत्रिकाएँः

समाचार पत्रों और कृषि से संबंधित पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, सलाहों और अनुभवों के माध्यम से भी किसानों को खेती से जुड़ी नई जानकारी मिलती है। कई बार किसान इन लेखों को पढ़कर अपनी खेती की पद्धति में सुधार करते हैं।

मोबाइल फोन और इंटरनेटः

वर्तमान समय में मोबाइल फोन का ग्रामीण क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से उपयोग किया जा रहा है। किसानों को मोबाइल संदेशों, कृषि एप्लीकेशन और इंटरनेट के माध्यम से मौसम की जानकारी, फसल प्रबंधन और बाजार भाव से संबंधित जानकारी प्राप्त होती है। इससे उन्हें सही समय पर सही निर्णय लेने में सहायता मिलती है।

सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्मः

सोशल मीडिया के बढ़ते उपयोग ने कृषि जानकारी के प्रसार को और अधिक सरल बना दिया है। किसान व्हाट्सएप समूहों, यूट्यूब चैनलों और अन्य ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से कृषि विशेषज्ञों से जुड़ सकते हैं और नई तकनीकों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। कई बार किसान अपने अनुभव भी साझा करते हैं, जिससे अन्य किसानों को भी सीखने का अवसर मिलता है।

किसान प्रशिक्षण और प्रदर्शन कार्यक्रमः

कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केंद्रों और कृषि विभाग द्वारा समय–समय पर किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम, खेत प्रदर्शन और गोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से किसानों को जायद फसलों की उन्नत तकनीकों के बारे में व्यावहारिक जानकारी दी जाती है।

कृषि संचार माध्यमों के लाभः

कृषि संचार माध्यमों के उपयोग से किसानों को कई प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि किसानों तक नई जानकारी समय पर पहुँच जाती है। इससे उनकी जागरूकता बढ़ती है और वे आधुनिक तकनीकों को अपनाने के लिए प्रेरित होते हैं। परिणामस्वरूप फसल उत्पादन और उत्पादकता में सुधार होता है। इसके अतिरिक्त किसानों को बाजार से संबंधित जानकारी भी प्राप्त होती है, जिससे वे अपनी उपज को उचित मूल्य पर बेच सकते हैं। इससे उनकी आर्थिक स्थिति में भी सुधार होता है।

कृषि संचार माध्यम जायद फसलों की नई तकनीकों के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनके माध्यम से किसानों तक समय पर और उपयोगी जानकारी पहुँचाई जा सकती है, जिससे वे अपनी खेती को अधिक वैज्ञानिक और लाभकारी बना सकते हैं। यदि इन माध्यमों का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाए और किसानों को इनके उपयोग के लिए प्रोत्साहित किया जाए, तो जायद फसलों का उत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ किसानों की आय में भी वृद्धि संभव है।

खेती से उद्यमिता तकः कृषि प्रसार सेवाओं में महिलाओं की सशक्त भूमिका

डॉ0 आकांक्षा सिंह[1], डॉ0 अतर हुसैन वारसी[2], डॉ0 विकास कुमार यादव[1], डॉ0 बलवीर सिंह[1], डॉ0 हरविंदर पाल[1], डॉ0 शैलजा देवी[1] एवं सुमित कुमार शुक्ल[3]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ एवं [2]प्रभारी, कृषि विज्ञान केन्द्र, हाथरस

[3]छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

भारत को प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान देश के रूप में जाना जाता है। देश की लगभग आधी से अधिक जनसंख्या आज भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि और उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर है। कृषि केवल खाद्यान्न उत्पादन का माध्यम ही नहीं बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आधारशिला भी है। इस कृषि व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और व्यापक रही है। ग्रामीण भारत में महिलाएँ खेतों में श्रम करने से लेकर पशुपालन, बीज संरक्षण, खाद्य प्रसंस्करण तथा घरेलू पोषण सुरक्षा तक अनेक गतिविधियों में सक्रिय योगदान देती हैं। खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार विकासशील देशों में महिलाएँ कुल कृषि श्रमशक्ति का लगभग 43 प्रतिशत हिस्सा हैं। भारत में महिलाओं की कृषि में भागीदारी और भी अधिक है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन और नीति आयोग की रिपोर्टों के अनुसार भारत में लगभग 64 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएँ किसी न किसी रूप में कृषि गतिविधियों में संलग्न हैं, जबकि 33 प्रतिशत महिलाएँ कृषि श्रमिक के रूप में कार्य करती हैं। पिछले कुछ दशकों में एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति देखने को मिली है जिसे कृषि का स्त्रीकरण कहा जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों से पुरुषों का शहरों की ओर रोजगार के लिए पलायन होने के कारण कृषि प्रबंधन की जिम्मेदारी धीरे–धीरे महिलाओं के हाथों में आ रही है। हालाँकि महिलाओं की भागीदारी अधिक है, फिर भी उन्हें भूमि स्वामित्व, तकनीकी ज्ञान, वित्तीय संसाधनों तथा बाजार तक पहुँच के मामले में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यही वह क्षेत्र है जहाँ कृषि प्रसार सेवाएँ महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कृषि प्रसार सेवाओं के माध्यम से महिलाओं को वैज्ञानिक कृषि तकनीकों, प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता तथा उद्यमिता के अवसरों से जोड़ा जाता है। इससे महिलाएँ केवल कृषि श्रमिक ही नहीं बल्कि सफल कृषि उद्यमी बन सकती हैं।

भारतीय कृषि में महिलाओं की भूमिकाः

भारत में कृषि कार्यों में महिलाओं की भागीदारी अत्यंत व्यापक है। वे खेती के लगभग सभी चरणों में सक्रिय भूमिका निभाती हैं।

कृषि कार्यों में महिलाओं का योगदानः

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के अनुसार कृषि गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी निम्न प्रकार हैः निराई–गुड़ाई लगभग 80–90 प्रतिशत, कटाई–लगभग 70–80 प्रतिशत, बीज बुवाई–लगभग 60–70 प्रतिशत, मड़ाई–लगभग 50 प्रतिशत। इसके अतिरिक्त महिलाएँ निम्न गतिविधियों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं: पशुपालन और दुग्ध उत्पादन, सब्जी उत्पादन, मशरूम उत्पादन, मधुमक्खी पालन, कुक्कुट पालन, खाद्य प्रसंस्करण। राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड के अनुसार भारत में दुग्ध उत्पादन से संबंधित लगभग 70 प्रतिशत गतिविधियाँ महिलाएँ संचालित करती हैं। इसी प्रकार किचन गार्डन और पोषण सुरक्षा में भी महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ग्रामीण परिवारों में महिलाएँ सब्जियों और फलों का उत्पादन कर परिवार के पोषण स्तर को सुधारती हैं।

कृषि का स्त्रीकरण:.पिछले कुछ वर्षों में कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी तेजी से बढ़ी है। इसके मुख्य कारण रू ग्रामीण क्षेत्रों से पुरुषों का शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन, कृषि में श्रम की बढ़ती आवश्यकता, स्वयं सहायता समूहों का विकास, महिलाओं की शिक्षा में वृद्धि, सरकारी योजनाओं के माध्यम से महिलाओं को प्रोत्साहन, ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षा में वृद्धि। इन कारणों से महिलाएँ अब केवल कृषि श्रमिक ही नहीं बल्कि कृषि प्रबंधक और निर्णयकर्ता के रूप में भी उभर रही हैं। FAO की

रिपोर्ट के अनुसार यदि महिलाओं को पुरुषों के समान संसाधन और अवसर उपलब्ध कराए जाएँ तो कृषि उत्पादन में 20–30 प्रतिशत तक वृद्धि संभव है।

कृषि प्रसार सेवाओं की अवधारणा: कृषि प्रसार सेवाएँ वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किसानों को नवीन कृषि तकनीकों, वैज्ञानिक जानकारी तथा प्रबंधन कौशल से अवगत कराया जाता है। कृषि प्रसार का मुख्य उद्देश्य किसानों को ज्ञान, कौशल और संसाधनों से सशक्त बनाकर उनकी आय और उत्पादकता को बढ़ाना है। नई कृषि तकनीकों का प्रसार किसानों को प्रशिक्षण प्रदान करना, कृषि समस्याओं का समाधान करना, किसानों को बाजार और वित्तीय संस्थाओं से जोड़ना कृषि उद्यमिता को बढ़ावा देना। कृषि प्रसार सेवाओं के प्रमुख घटक हैं: प्रशिक्षण एवं क्षमता निर्माण, तकनीकी सलाह, कृषि प्रदर्शन, किसान संगोष्ठी और कार्यशालाएँ, सूचना एवं संचार तकनीक का उपयोग। भारत में कृषि प्रसार सेवाएँ कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि विश्वविद्यालय, राज्य कृषि विभाग, स्वयंसेवी संगठन इत्यादि। इन संस्थाओं के माध्यम से किसानों को नवीन कृषि तकनीकों से परिचित कराया जाता है।

महिलाओं के सशक्तिकरण में कृषि प्रसार सेवाओं की भूमिका :.कृषि प्रसार सेवाएँ महिलाओं को कृषि उद्यमिता से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

1. तकनीकी ज्ञान का प्रसार: कृषि प्रसार कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं को उन्नत कृषि तकनीकों की जानकारी दी जाती है जैसे उन्नत बीजों का उपयोग, जैविक खेती, समेकित पोषक तत्व प्रबंधन, समेकित कीट प्रबंधन, जल संरक्षण तकनीक। इन तकनीकों के उपयोग से महिलाएँ कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकती हैं।

2. कौशल विकास और प्रशिक्षण:.कृषि प्रसार सेवाओं के माध्यम से महिलाओं को विभिन्न आय–वर्धक गतिविधियों का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रमुख प्रशिक्षण कार्यक्रम मशरूम उत्पादन, मधुमक्खी पालन, बकरी पालन, कुक्कुट पालन, डेयरी प्रबंधन, खाद्य प्रसंस्करण। कृषि विज्ञान केंद्र (के0वी0के0) देशभर में हजारों महिलाओं को इन गतिविधियों का प्रशिक्षण प्रदान कर रहे हैं।

3. स्वयं सहायता समूह का गठन:.स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम है। राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत देशभर में लाखों स्वयं सहायता समूह कार्य कर रहे हैं। इन समूहों के माध्यम से महिलाएँ सामूहिक बचत करती हैं, बैंक से ऋण प्राप्त करती हैं, छोटे–छोटे उद्यम शुरू करती हैं।

4. कृषि उद्यमिता को बढ़ावा:.कृषि प्रसार सेवाएँ महिलाओं को कृषि आधारित व्यवसाय शुरू करने के लिए प्रेरित करती हैं। महिलाएँ निम्न क्षेत्रों में उद्यमिता विकसित कर सकती हैं जैविक खेती, मशरूम उत्पादन, फूलों की खेती, औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती, खाद्य प्रसंस्करण, डेयरी उद्योग। नाबार्ड की रिपोर्ट के अनुसार कृषि आधारित सूक्ष्म उद्यमों में महिलाओं की भागीदारी लगातार बढ़ रही है।

5. डिजिटल कृषि और महिला किसान:.आज तकनीक के उपयोग से महिलाएँ कृषि में नई ऊँचाइयाँ प्राप्त कर रही हैं। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में कुछ महिलाएँ ड्रोन तकनीक का उपयोग कर फसल पर उर्वरक और कीटनाशक का छिड़काव कर रही हैं, जिससे उनकी आय और सामाजिक सम्मान दोनों में वृद्धि हुई है। यह दर्शाता है कि यदि महिलाओं को उचित प्रशिक्षण और संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ तो वे कृषि में तकनीकी नवाचार को भी सफलतापूर्वक अपना सकती हैं। आज सूचना एवं संचार तकनीक के माध्यम से महिलाओं को कृषि से संबंधित जानकारी आसानी से उपलब्ध हो रही है। कुछ महत्वपूर्ण डिजिटल प्लेटफॉर्म हैं किसान कॉल सेंटर, मोबाइल कृषि एप, ई–नाम, डिजिटल कृषि परामर्श। इन माध्यमों से महिलाएँ बाजार भाव, मौसम जानकारी और कृषि तकनीकों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकती हैं।

6. महिला किसान उत्पादक संगठन:- किसान उत्पादक संगठन छोटे और सीमांत किसानों को संगठित कर उन्हें बाजार से जोड़ने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। महिला किसान उत्पादक संगठन माध्यम से महिलाएँ सामूहिक रूप से उत्पादन करती हैं, इनपुट खरीदती हैं, उत्पादों का विपणन करती हैं एवं

बेहतर कीमत प्राप्त करती हैं। कृषि मंत्रालय के अनुसार भारत में हजारों FPO स्थापित किए जा चुके हैं जिनमें कई महिला–नेतृत्व वाले संगठन भी शामिल हैं।

महिला किसानों के सामने चुनौतियाँ:

हालाँकि महिलाओं का कृषि में योगदान महत्वपूर्ण है, फिर भी उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

1. भूमि स्वामित्व की कमी:– भारत में केवल 13 प्रतिशत कृषि भूमि महिलाओं के नाम पर है। भूमि स्वामित्व की कमी के कारण महिलाओं को बैंक ऋण प्राप्त करने में कठिनाई होती है और सरकारी योजनाओं का सीमित लाभ मिलता है।

2. तकनीकी जानकारी का अभाव:– अधिकांश ग्रामीण महिलाओं को आधुनिक कृषि तकनीकों की जानकारी नहीं होती।

3. वित्तीय संसाधनों की कमी– महिलाओं के पास पर्याप्त पूंजी नहीं होती जिससे वे कृषि उद्यम शुरू कर सकें।

4. सामाजिक बाधाएँ– ग्रामीण समाज में कई सामाजिक मान्यताएँ महिलाओं की स्वतंत्र भागीदारी को सीमित करती हैं।

5. कृषि प्रसार सेवाओं तक सीमित पहुँचः – एक अध्ययन के अनुसार कृषि प्रसार तंत्र में महिला प्रसार कर्मियों की संख्या केवल 0–5: तक है, जिससे महिलाओं तक तकनीकी जानकारी पहुँचने में बाधा आती है।

महिला किसानों के लिए सरकारी पहल:- महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए सरकार कई योजनाएँ चला रही है। जैसे महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, कृषि विज्ञान केंद्र प्रशिक्षण कार्यक्रम, स्टार्ट–अप इंडिया योजना इत्यादि प्रमुख योजनायें। इन योजनाओं के माध्यम से महिलाओं को प्रशिक्षण, ऋण और तकनीकी सहायता प्रदान की जाती है।

कृषि प्रसार सेवाओं को मजबूत बनाने के उपाय:-

महिलाओं को कृषि उद्यमिता से जोड़ने के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं:

- महिलाप्रसार कर्मियों की संख्या बढ़ाई जाए।
- महिलाओं के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।
- महिला किसान समूहों को प्रोत्साहित किया जाए।
- डिजिटल तकनीकों का उपयोग बढ़ाया जाए।
- महिला किसान उत्पादक संगठन को बढ़ावा दिया जाए।
- बाजार से सीधा जुड़ाव स्थापित किया जाए।

सफल महिला कृषि उद्यमियों के उदाहरण:-

लखनऊ जनपद की महिला किसान द्वारा मशरूम उद्यमिता– उत्तर प्रदेश के लखनऊ जनपद के एक गाँव में स्वयं सहायता समूह से जुड़ी महिलाओं ने कृषि विज्ञान केंद्र से मशरूम उत्पादन का प्रशिक्षण प्राप्त किया। प्रशिक्षण के बाद उन्होंने सामूहिक रूप से मशरूम उत्पादन शुरू किया। प्रारंभ में उन्होंने छोटे स्तर पर उत्पादन शुरू किया, लेकिन धीरे–धीरे स्थानीय बाजार में मशरूम की मांग बढ़ने लगी। आज यह समूह प्रति वर्ष लगभग 3–4 लाख रुपये तक की आय अर्जित कर रहा है

बाराबंकी जिले की महिला डेयरी उद्यमी– उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले में महिलाओं ने स्वयं सहायता समूह के माध्यम से डेयरी उद्यम शुरू किया। प्रारंभ में इन महिलाओं के पास केवल 1–2 दुधारू पशु थे, लेकिन कृषि प्रसार अधिकारियों और पशुपालन विभाग के प्रशिक्षण के बाद उन्होंने वैज्ञानिक पशुपालन तकनीकों को अपनाया। परिणाम स्वरूप प्रति परिवार मासिक आय में लगभग

12,000–15,000 रुपये की वृद्धि ,स्थानीय स्तर पर महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर एंव ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार।

वाराणसी जिले में महिला स्वयं सहायता समूह द्वारा खाद्य प्रसंस्करण– वाराणसी जिले के ग्रामीण क्षेत्र में महिला स्वयं सहायता समूह ने कृषि प्रसार विभाग के सहयोग से खाद्य प्रसंस्करण इकाई शुरू की। प्रशिक्षण के बाद महिलाओं ने स्थानीय स्तर पर उत्पादों की बिक्री शुरू की। परिणाम स्वरूप प्रति महिला वार्षिक आय में लगभग 40–50 हजार रुपये की वृद्धि, स्थानीय बाजार में महिलाओं के उत्पादों की पहचान, ग्रामीण महिलाओं में उद्यमिता की भावना का विकास।

बुंदेलखंड क्षेत्र में महिला किसान द्वारा बकरी पालन उद्यम– बुंदेलखंड क्षेत्र के कई जिलों में महिलाएँ बकरी पालन को एक सफल उद्यम के रूप में अपना रही हैं। कृषि विज्ञान केंद्र और पशुपालन विभाग द्वारा महिलाओं को प्रशिक्षण प्रदान किया गया। परिणामरू महिलाओं की आय में लगभग 30–35 प्रतिशत वृद्धि।

इस प्रकार कृषि प्रसार सेवाओं के माध्यम से महिलाओं ने खेती से उद्यमिता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

भविष्य की संभावनाएँः

भारतीय कृषि प्रणाली में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे खेत से लेकर बाजार तक कृषि के प्रत्येक चरण में योगदान देती हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को केवल श्रमिक के रूप में नहीं बल्कि कृषि उद्यमी और निर्णयकर्ता के रूप में पहचान दी जाए। कृषि प्रसार सेवाएँ महिलाओं को तकनीकी ज्ञान, प्रशिक्षण और संसाधन उपलब्ध कराकर उन्हें सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। यदि महिलाओं को उचित अवसर, प्रशिक्षण और संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ तो वे कृषि क्षेत्र में नई क्रांति ला सकती हैं और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बना सकती हैं। इस प्रकार "खेती से उद्यमिता तक" का यह सफर महिलाओं के सशक्तिकरण के साथ–साथ देश की कृषि और ग्रामीण विकास के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मृदा नमूना लेने की विधि, पोषक तत्वों की कमी एवं निदान

डा0 खलील खान[1], डा0 अजय कुमार सिंह[2], डा0 राजेश राय [1], डा0 अरुण कुमार सिंह[1], डा0 शशीकान्त[1] एवं शुभम यादव[3]

[1]वैज्ञानिक, [2]प्रभारी, [3]एस0आर0एफ0, कृषि विज्ञान केन्द्र, कानपुर देहात

उर्वरकों तथा भूमि सुधारकों की मात्रा के आकलन हेतु मिट्टी के यांत्रिक, भौतिक एवं रासायानिक विश्लेषण की प्रक्रिया को मृदा स्वास्थ्य परीक्षण कहते हैं। पौधों के समुचित वृद्धि, विकास एवं पोषण के लिये कुल 17 तत्वों की आवश्यकता होती है। जिनमें कार्बन, हाइड्रोजन एवं आक्सीजन पौधे वायु एवं जल से ग्रहण करते हैं। शेष 14 तत्वों को पौधे भूमि से ग्रहण करते हैं। इनमें से नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश का प्रयोग पौधे सबसे अधिक करते हैं। अतः इन्हें मुख्य पोषक तत्व के नाम से जानते हैं। कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं सल्फर भी पौधों के पोषण में आवश्यक होते हैं, जिन्हें द्वितीयक या गौण पोषक तत्व कहते हैं। इनके अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्वों में जिंक, आयरन, कॉपर, मैगनीज, बोरान, मालीब्डेनम, क्लोरीन एवं निकिल भी पौधों के विकास एवं पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

मृदा परीक्षण परिणामों से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि रासायनिक खादों का अधिक एवं असन्तुलित प्रयोग के कारण कार्बन और फास्फोरस के अतिरिक्त सल्फर और जिंक की अधिक कमी हो गई है, जिसके कारण मृदा स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।

मृदा नमूना लेने के लिए आवश्यक उपकरण एवं सामग्री–

खुर्पी, फावड़ा, आगर, पैमाना, बाल्टी, लेबल, कपड़े की थैली।

मृदा परीक्षण हेतु नमूना लेने की विधि–

फसल कटने के तुरन्त बाद मृदा नमूना लेने का बहुत उपयुक्त समय होता है। चूँकि एक खेत की मिट्टी भिन्न–भिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न होती है। अतः नमूना ऐसा होना चाहिये जो कि पूरे खेत का समान प्रतिनिधित्व करता हो। नमूना ऐसी जगह से लें जहाँ खाद का ढेर, मेड़ या सिंचाई की नाली न हो। इसके लिये खेत में 6 या 7 जगहों से चिन्हित करके 6 इंच के आकार का गढ्ढा खोदते है फिर चारों किनारों से 2 इंच मोटी परत उसी गढ्ढे में गिरा देते हैं। अब हाथ से सम्पूर्ण मिट्टी एक बर्तन में रखते है इसी तरह 7 जगहों से मिट्टी लेकर फर्श पर रखते हैं धन का निशान बनाकर कोई दो भाग रख लेते हैं। शेष भाग हटा देते हैं। यह क्रिया तब तक करते हैं कि मिट्टी जब तक 500 ग्राम न रह जाये। अब इस मिट्टी को साफ कपड़े की थैली में रखकर उसमें एक पर्ची डालते हैं। जिस पर कृषक का नाम, खेत का खसरा नम्बर एवं पिछली बोई गई फसल, आगे बोई जाने वाली फसल का नाम, ग्राम, विकास खण्ड, जनपद, आदि अंकित कर मृदा परीक्षण प्रयोगशाला तक पहुंचाते है।

मृदा नमूना एकत्रित करते समय सावधानियाँः

1. निचली या खाद के ढेर या उर्वरक दी गई जगहों पर, वृक्षों तथा मकानों के निकटवर्ती स्थलों से मृदा का नमूना एकत्रित नहीं करना चाहिए।
2. नमूना एकत्रित करने के लिए साफ कपड़े की थैली का प्रयोग करना चाहिए।

मृदा परीक्षणों के बिना उर्वरकों का प्रयोग करना, ठीक उसी प्रकार है, जैसे डाक्टर की सलाह के बिना दवा का प्रयोग करना। उदाहरण के तौर पर यदि नत्रजन की कमी है तो फास्फोरस तथा पोटाश का प्रयोग लाभदायक नहीं रहेगा।

मृदा परीक्षण प्रयोगशाला द्वारा दिये गये मृदा स्वास्थ्य कार्ड पर अंकित सूचनायें आपको आपके खेत की मिट्टी की वैज्ञानिक जांच के साथ बोये जाने वाली फसल हेतु विभिन्न पोषक तत्वों की संतुलित मात्राओं की संस्तुति देती है। इससे आपको कम लागत पर अधिक उपज प्राप्त होती है। साथ ही साथ मृदा स्वास्थ्य भी कायम रहता है। मिट्टी का स्वास्थ्य कायम रखने के लिए किसान भाईयों को निम्न सलाह दी जाती है।

1. फसल अवशेष को जलायें नहीं बल्कि ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करके खेत में सड़ा–गला दें।
2. हरी खाद, गोबर की खाद, नाडेप कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग अपने खेतों में करें।
3. जैव उर्वरक जैसे राइजोबियम कल्चर, फास्फेटिक, नील हरित शैवाल, अजोला, पी0एस0बी0 आदि का प्रयोग करें।
4. कीटनाशकों/कवकनाशी/खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग सीमित करें।
5. रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करें।
6. मृदा पी0एच0 सामान्य रखने हेतु मृदा परीक्षण के आधार पर जिप्सम का भी प्रयोग करें।

पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं निदान–

नाइट्रोजन की कमी के लक्षण–

1. पौधों की पत्तियों का रंग पीला व हरा हो जाता है।
2. पौधों की वृद्धि ठीक प्रकार से नहीं हो पाती है इसलिए पैदावार कम होती है।
3. दाने वाली फसलों में सबसे पहले पौधों की निचली पत्तियाँ सूखना प्रारम्भ कर देती हैं और धीरे–धीरे ऊपर की पत्तियाँ भी सूख जाती है।
4. गेहूँ तथा अन्य फसलें जिनमें कल्ले निकलते हैं नत्रजन की कमी से कल्ले कम बनते हैं।
5. फलों वाले पेड़ों में अधिकतम फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं फलों का आकार भी छोटा होता है।
6. पत्तियों का रंग सफेद हो जाता है और कभी कभी पौधों की पत्तियाँ जल भी जाती है।
7. हरी पत्तियों के बीच–बीच में सफेद धब्बे (क्लोरोसिस) भी पड़ तो है।
8. पीला सा हरा रंग सुस्पष्ट और धीमी वृद्धि पत्तियों का सूखना, झुलसना जो कि पौधों की तली से प्रारम्भ होता है और ऊपर की ओर बढ़ता है। मक्का अनाज और घासों जैसे पौधों में झुलसन तली की पत्तियों के अग्र भाग से प्रारम्भ होती है और केन्द्र के नीचे की ओर या मध्य सिरे के साथ–साथ चलती है।

सुधारः

1. खाद एवं नाइट्रोजनधारी उर्वरकों का उचित मात्रा में प्रयोग करें।
2. जल निकास एवं लीचिंका का सुधार करें।
3. फलीदार फसलों को खेतों में उगायें।
4. मृदा में वायु संचार का सुधार करें।
5. खेतों में हरी खाद का प्रयोग करें।
6. नीली हरी एल्गी खेतों में उगाये।

नाइट्रोजन की अधिकता से हानियाँः

आवश्यकता से अधिक नाइट्रोजन भी फसलों के लिए हानिकारक होती है। इसलिए खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान दिया जाये की फसल को आवश्यकता से अधिक मात्रा में नाइट्रोजन न दी जाये। अधिक मात्रा में नाइट्रोजन देने से निम्न हानिकारक प्रभाव होते हैं।

1. पौधों के तने कमजोर हो जाते है जिससे थोडी सी हवा चलने पर फसल गिर जाती है।
2. कोमल पौधों पर कीडे मकोड़े का आक्रमण अधिक होता है।
3. फसल देर से पककर तैयार होती है।
4. भूसे के अनुपात में दाना घट जाता है। गेहूँ इसका ज्वलन्त उदाहरण है।
5. सब्जियों और फसलों में रखने के गुण कम हो जाते हैं। जिससे इन्हें अधिक समय तक नहीं रख सकते।
6. गन्ने की फसल में अधिक नाइट्रोजन का प्रयोग करने से चीनी की मात्रा कम हो जाती है।
7. आलू तथा अन्य फसलों में अधिक मात्रा में नाइट्रोजन के कारण पत्तियों की वृद्धि अधिक होती है जिससे उत्पादन कम होता है।

8. पौधों की दीवारे मुलायम तथा पतली होने के कारण गर्मी तथा कोहरे से बहुत हानि होती है।

फास्फोरस की कमी के लक्षणः

1. फास्फोरस की कमी से पौधों का रंग प्रायः गहरा हरा हो जाता है तथा उनकी निचली पत्तियाँ पीली होकर सूख जाती है।
2. पौधों की बढवार रूक जाती है और पत्तियाँ छोटी रह जाती है।
3. मूल तंत्र का विकास तथा फलों का उत्पादन कम हो जाता है और पौधे मुडे हुए छोटे रह जाते हैं।
4. मक्का में पत्तियों का रंग बैगनी हरा हो जाता है फसल देर से पकती है और भुट्टे भली प्रकार से नहीं बन पाते हैं।
5. गन्ने की पत्तियाँ संकरी और नीली हरी हो जाती है।
6. कपास के पौधों का रंग गहरा हरा हो जाता है और शाखायं तथा पत्तियाँ छोटी हो जाती है तथा उनकी बौडियाँ देर से पकती हैं।
7. दलहनी पौधों में गहरा रंग होने के अलावा पत्तियाँ ऊपर की ओर मुड जाती हैं। पत्तियाँ बहुत छोटी और पतली रहती है।
8. जड़ की ग्रन्थियों का आकार एवं संख्या कम हो जाती है।
9. आलू की फसल में पत्तियाँ सामने की तरफ मुड जाती हैं और पत्तियों के किनारे झुलस जाते हैं।
10. नीबू वर्गीय पौधों की बढ़वार रूक जाती है सबसे पहले उनकी पुरानी पत्तियों का रंग फीका हो जाता है ऐसी पत्तियों पर निक्रोसिस रोग के चकत्ते पड़ जाते हैं।
11. पौधों की पत्तियाँ, तना तथा शाखायें नील लोहित हो जाती है वृद्धि धीमी होती है तथा परिपक्वता देर से होती है और अनाज, फल तथा बीज की कम पैदावार होती है।

सुधारः

1. खाद एवं फास्फोरस युक्त उर्वकों का उचित मात्रा में प्रयोग करें।
2. अम्लीय मृदाओं का पी0एच0 अधिक करके या नियन्त्रण करके।
3. उचित जल निकास करके।

पोटैशियम की कमी के लक्षणः

1. पोटैशियम की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पौधों की पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं। इन पत्तियों के किनारे झुलसे भी दिखाई देते हैं।
2. अनाजों की फसलों में इसकी कमी से तने पतले हो जाते हैं तथा अधिक कमी से पत्तियाँ झुलस जाती हैं।
3. टिलर पर बालियाँ नहीं आती है तथा दानों का विकास नहीं हो पाता।
4. कपास में पीली सफेद कुरूचुर्ण रोग हो जाता है जिससे रेशे की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती है।
5. दलहनी फसलों में इसकी कमी का पहला लक्षण पत्तियों के किनारों पर चकत्तों के रूप में दिखाई देता है। बाद में यह जगह जल्दी ही सूख जाती है। पौधो की वृद्धि नहीं होती है तथा बौने रह जाते हैं।
6. तम्बाकू के पौधों की पत्तियों की नसो के बीच में उनके सिरो पर या किनारों पर छोटे–छोटे धब्बे पड़ जाते हैं पत्तियों का रूप खराब हो जाता है और जलने की क्षमता भी कम हो जाती है।
7. नीबू वर्गीय पौधों में फल आने के समय पत्तियाँ बहुत ज्यादा झडती हैं। कोपलें और नई पत्तियाँ पकने और कड़ी होने से पहले ही झड जाती हैं।
8. निचली पत्तियों पर छोटे–छोटे घाव होते हैं या वे किनारों तथा सिरों पर जली सी होती हैं कटे–फटे किनारों को छोडते हुए मृत होकर गिर जाती हैं। घासों और अनाजों में झुलसन

पत्तियों के अग्र भाग से प्रारम्भ होती है और मध्य सिरे को छोडते हुए अक्सर किनारे से नीचे की ओर बढ़ती है।

सुधार–

पोटेशियम की कमी मृदा में खाद एवं पोटाशधारी उर्वरकों के प्रयोग से तथा लीचिंग को नियन्त्रित करके दूर की जा सकती है।

कैल्सियम की कमी के लक्षण–

1. अन्तस्थ कलिका में नई पत्तियाँ हुकदार शक्ल की हो जाती हैं या देखने में सुकड़ी हुई लगती हैं।
2. नई पत्तियों के किनारों और अग्र भागों पर मृत धब्बे हो जाते हैं।
3. जड़ो का मृत हो जाना सभी लक्षणों से पहले होता है।
4. जड़े छोटे एवं बहुत शाखाओं वाली होती हैं।
5. पत्तियों के किनारो के साथ–साथ हल्की हरी पट्टी दिखाई देती है।
6. आलू के पौधे झाडी की तरह हो जाते हैं।
7. नींबू वर्गीय पौधों की पत्तियों का हरा रंग उनके किनारों की ओर से फीका पड़ना आरम्भ होता है और बढ़ते–बढ़ते नसों के बीच की जगह तक पहुँच जाता है।

सुधार–

1. मृदा सुधारकों जैसे जिप्सम चूना का प्रयोग करें।
2. सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग करें।
3. उर्वरकों जैसे सुपर फास्फेट, कैल्सियम अमोनियम, नाइट्रेट आदि का प्रयोग करें।

मैग्नीशियम की कमी के लक्षण–

1. शिराओं के बीच हरे रंग की सामान्य धारी होती है जो कि निचली पत्तियों से प्रारम्भ होती है और बाद में मृत हो जाती है।
2. पत्तियों की सिराये हरी बनी रहती हैं।
3. हरी शिराओं के बीच में कपास की पत्तियाँ अक्सर लाल नीली रंग में बदल जाती है।
4. शिराओं के बीच में मृत क्षेत्र बहुत ही शीघ्रता से विकसित हो जाते हैं।
5. आलू की पत्तियाँ खस्ता और जल्दी टूटने वाली हो जाती हैं।
6. नींबू वर्गीय पौधों में पत्तियों पर अनियमित आकार के पीले धब्बे हो जाते हैं, ये पीली पत्तियाँ बाद में गिर जाती है।

सुधारः

मृदा में मैग्नीशियम की कमी को दूर करने के लिए प्रायः मृदा सुधारकों जैसे डोलोमाइट पोटैशियम, मैग्नीशियम सल्फेट और मैग्नीसाइट आदि का प्रयोग करना चाहिए।

सल्फर की कमी के लक्षण–

1. पत्तियाँ हल्की हरी होती हैं और समीप की शिराओं के बीच के भागों से शिराये हल्की होती हैं, पत्तियों पर मृत धब्बे पाये जाते है। पुरानी पत्तियों का कुछ या बिल्कुल नहीं सूखना आदि।
2. फलों के पकने से पहले टूटना या हल्का हरा रहना।
3. बहुत से पौधों में सल्फर की कमी के लक्षण लगभग उसी प्रकार होते है जैसे कि नाइट्रोजन की कमी के लक्षण होते हैं। जिसकी वजह से कभी–कभी संसय होने से गलत अर्थ निकल जाता है क्योंकि दोनों दशाओं में पत्तियाँ लगभग समान रूप से पीली या हरितमाहीन होती है। अन्तर यह है कि गंधक की कमी होने पर पौधो की ऊपरी पत्तियाँ पहले पीली पड़ती हैं जबकि नाइट्रोजन की कमी होने से पौधे की निचली पत्तियाँ पहले पीली पड़ती है जब दोनों की कमी होती है तब पौधों की ऊपरी और निचली दोनों पत्तियाँ पीली पड़ जाती है।

सुधारः

सल्फर उर्वरकों जैसे अमोनियम सल्फेट, जिप्सम, सुपर फास्फेट आदि के प्रयोग से सल्फर की कमी दूर की जा सकती है।

आवश्यक संस्तुतियाँ–

1. अम्लीय मिट्टी में युरिया का प्रयोग न करें। सम्भव हो सके तो कैल्सियम, अमोनियम नाइट्रेट उर्वरक का प्रयोग करें क्योंकि अमोनियम नाइट्रेट उर्वरक में नाइट्रोजन के साथ–साथ कैल्सियम व मैग्नीशियम भी होता है जिससे अम्लीय मृदा में इसका प्रयोग अधिक लाभदायक होता है।
2. सिंचित दशा में फसलों के लिए नाइट्रोजन की कुल अनुमोदित मात्रा 2/3 भाग व फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय प्रयोग करें। शेष नाइट्रोजन की मात्रा को दो भागों में बांटकर पहली सिंचाई के बाद तथा दूसरे फल आने के पूर्व करें।
3. खड़ी फसल में नत्रजन प्रयोग करते समय खेत में उचित नमी होनी चाहिए, उर्वरक का प्रयोग खेत में समान रूप से करें।
4. फास्फोरस व पोटाश की खादों को पूर्ण में बीज से 5 सेमी0 गइराई पर अवस्थापन करें।
5. नत्रजन व पोटाश उर्वरकों को कभी भी बीज के साथ मिलाकर नहीं बोना चाहिए नही तो बीज अकुंरण पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।
6. असिंचित क्षेत्रों में पोटाश के समुचित प्रयोग से फसलों जलाभाव अथवा सूखे को सहन करने की क्षमता को बढ़ा देता है।
7. अधिक अम्लीय मिट्टी में चूने व जिप्सम का प्रयोग करें।
8. तिलहनी फसलों में सल्फर 20 से 50 किलोग्राम प्रति हे0 की दर से प्रयोग करें।
9. सडी गोबर की खाद व अन्य फसल अवशेष मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए उपयोगी है। अतः इनका प्रयोग अवश्य करें इससे मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है।
10. फसलोत्पादन में रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ जैव उर्वरकों का प्रयोग करके लागत कम की जा सकती है। तथा रासायनिक उर्वरकों द्वारा होने वाले खतरों को कम किया जा सकता है।

सावधानियाँ–

पाला, सूखा, झुलसा पौधों के कीड़े मकौड़े और रोगों के आक्रमण, जलाक्रांति, मृदा की क्षारीयता, रसायनों की फुहारों से क्षति या अत्यधिक खनिज पोषकों के विषैले प्रभावों के कारण अल्पता के लक्षण जटिल हो सकते हैं। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि पोषक तत्वों की अल्पता के लक्षणों के कुशल प्रयोग के साथ–साथ निदान के अन्य विधियों जैसे पौधे व मृदा परीक्षण, सही उर्वरक निर्धारण प्रक्रिया के लिए अच्छा कदम सिद्ध हो सकता है।